स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

CCMAP-03

औषधीय एवं सगंधीय पौधों की खेती

(प्रमाण-पत्र पाठ्यक्रम)

Certificate in Cultivation of Medicinal and Aromatic Plants

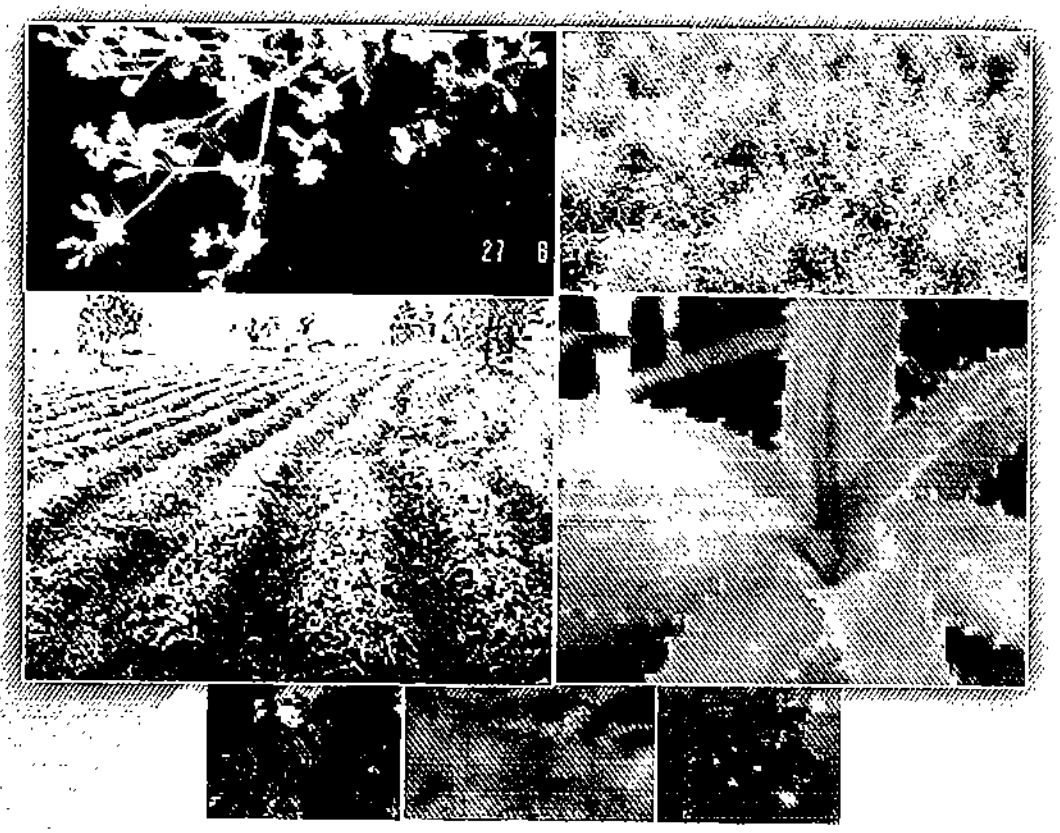

UPRTOU

अन्य औषधीय एवं सुगन्धीय पौधे : उत्पाद निर्माण और विपणन

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, इलाहाबाद - 211013

औषधीय एवं सगंधीय पौधों की खेती

(प्रमाण–पत्र पाठ्यक्रम)

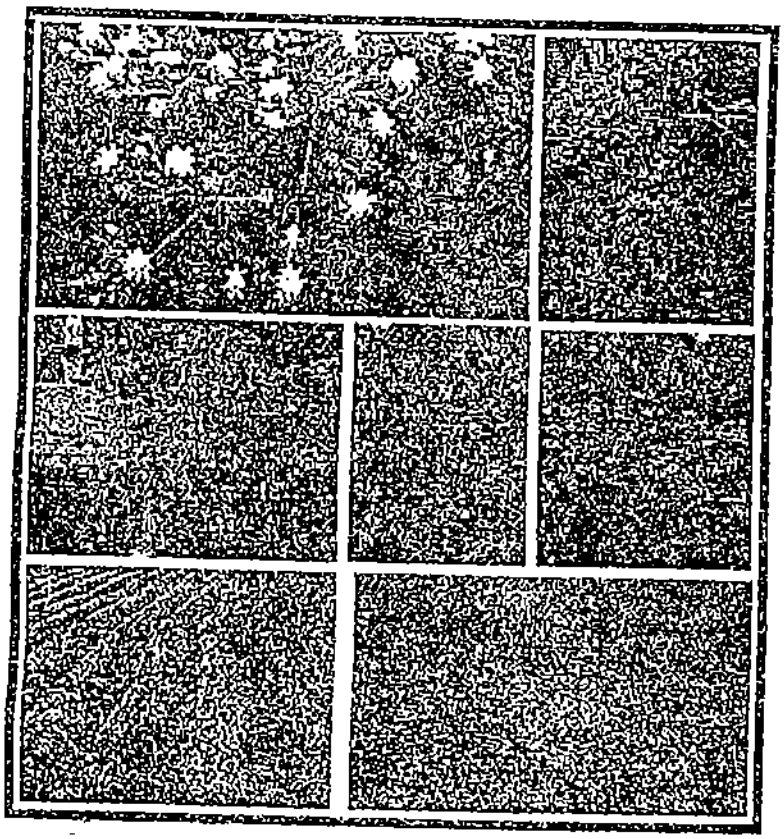

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
17, महर्षि दयानन्द मार्ग, (थार्नहिल रोड)
इलाहाबाद–211 001

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

CCMAP-03

अन्य औषधीय एवं सुगन्धीय पौधे :
उत्पाद निर्माण और विपणन

खण्ड 1

इकाई : 1
भारत में खेती के लिए उपयुक्त प्रमुख औषधीय पौधे 3

इकाई : 2
भारत में खेती के लिए उपयुक्त अन्य औषधीय पौधे 29

इकाई : 3
पहाड़ी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त औषधीय पौधे 48

इकाई : 4
भारत में खेती के लिए उपयुक्त कुछ प्रमुख संगंधीय पौधे 76

खण्ड–3 का परिचय

खण्ड–3 में अन्य औषधीय एवं सगन्धीय पौधों के संदर्भ में पूर्ण जानकारी, आय–व्यय की आर्थिकी एवं विभिन्न उत्पादों का निर्माण एवं विपणन का प्रबन्धन इत्यादि के संदर्भ में पूर्ण जानकारी उपलब्ध करायी गयी है।

खण्ड–3 में भारत में खेती के लिए उपयुक्त प्रमुख अन्य औषधीय पौधों के संदर्भ में विस्तार से वर्णन किया गया है। इकाई–1 में 25 औषधीय पौधों– 1.सफेद मूसली, 2. कालमेघ, 3. कलिहारी, 4. गुड़मार, 5. अश्वगंधा 6. कोलियस, 7. सर्पगंधा, 8. लेमनग्रास, 9. तुलसी, 10. सतावर, 11. स्टीविया, 12. मुलैठी, 13. मिल्क थिस्टल, 14. भुई आमला, 15. बेल, 16. गुग्गुल, 17. पिप्पली, 18. सनाय, 19. ब्राह्मी, 20. इसबगोल, 21. गिलोय, 22. मकोय, 23. चन्दन, 24. कोकुम, 25. बायबिडंग। इकाई–2 में 14 औषधीय पौधों– 1. अशोक, 2. जैट्रोफा, 3. ग्वारपाठा, 4. चन्द्रशूर, 5. सदाबहार, 6. पपीता, 7. सुरांजन, 8. धतूरा, 9. तिलपुष्पी, 10. जायफल, 11. कवाच, 12. कुचला, 13. कालादाना, 14. खुरासानी अजवायन तथा इकाई–3 में पहाड़ी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त 17 औषधीय पौधों–1. कुटकी, 2 .दारूहल्दी, 3. जटामांसी, 4. कूठ, 5. वत्सनाभ 6. कुंकुम (केसर), 7. अतिविषा, 8. चिरायता, 9. एंजेलिका ग्लौका, 10. आरनेबिया बैन्थामाई, 11. हिडिक्यम स्पिकेटम, 12. हिरेक्लियम केन्डीकंस, 13. ससुरिया ओबवेलेटा, 14. सेलिनम टेन्युफोलियम, 15. बेलाडोना, 16. एट्रोपा बेलाडोना, 17. कुनैन तथा इकाई– 4 में 8 प्रमुख संगंधीय पौधों– 1. जापानी पोदीना, 2. आर.आर.एल.सी.एन.–5, 3. पामारोजा अथवा रेशा घास, 4. सिट्रोनेला, 5. गुलाब, 6. खस, 7. पचौली, 8. जिरेनियम के संदर्भ में खेती से सम्बन्धित सम्पूर्ण जानकारियाँ उपलब्ध करायी गयी हैं औषधीय खेती के प्रोत्साहन हेतु देश की शीर्षस्थ संस्था, राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड, नई दिल्ली, संगंधीय पौधों की खेती तथा उच्च तकनीकी वाली बागवानी फसलों हेतु किसानों के सहयोगी संस्थान, राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड, ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित होने वाली औषधीय एवं सुगन्धीय पौधों के प्रसंस्करण की इकाइयों के लिए मददगार खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्ड, जेट्रोफा तथा नीम आदि जैसे वृक्षमूल तिलहनों के प्रोत्साहन हेतु राष्ट्रीय तिलहन एवं वनस्पतिक तेल विकास बोर्ड की अनुदान योजना के संदर्भ में पूर्ण विवरण तथा कृषकों, बेरोजगार, प्रशिक्षित युवकों के स्वरोजगार एवं आमदनी बढ़ाने के संदर्भ में वित्तीय सहायता की प्राप्ति एवं वितरण आदि के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी उपलब्ध करायी गयी है।

खण्ड – 3

इकाई – 1

1.1 भारत में खेती के लिए उपयुक्त प्रमुख औषधीय पौधे

1.1.1 सफेद मूसली
1.1.2 कालमेघ
1.1.3 कलिहारी
1.1.4 गुड़मार
1.1.5 अश्वगंधा
1.1.6 कोलियस
1.1.7 सर्पगंधा
1.1.8 लेमनग्रास
1.1.9 तुलसी
1.1.10 सतावर
1.1.11 स्टीविया
1.1.12 मुलैठी
1.1.13 मिल्क थिस्टल
1.1.14 भुई आमला
1.1.15 बेल
1.1.16 गुग्गुल
1.1.17 पिप्पली
1.1.18 सनाय
1.1.19 ब्राह्मी
1.1.20 इसबगोल
1.1.21 गिलोय
1.1.22 मकोय
1.1.23 चन्दन
1.1.24 कोकुम
1.1.25 बायबिडंग

खण्ड– 3

इकाई – 1

1.1 भारत में खेती के लिए उपयुक्त प्रमुख औषधीय पौधे

1.1.1 सफेद मूसली *(Chlorophytum borivillianum)* : मध्य भारत के विभिन्न प्रदेशों में प्राकृतिक रूप से जंगलों में पाया जाने वाला औषधीय पौधा सफेद मूसली एक अत्यधिक औषधीय उपयोग का पौधा है जिसका उपयोग विभिन्न शक्तिवर्धक दवाइयों, स्वास्थ्य टॉनिकों, सेक्स टॉनिकों आदि में किया जाता है। एक प्रमुख सैक्स टॉनिक के रूप में प्रचारित यह पौधा "विएाग्रा" का भारतीय रूप माना जाता है।

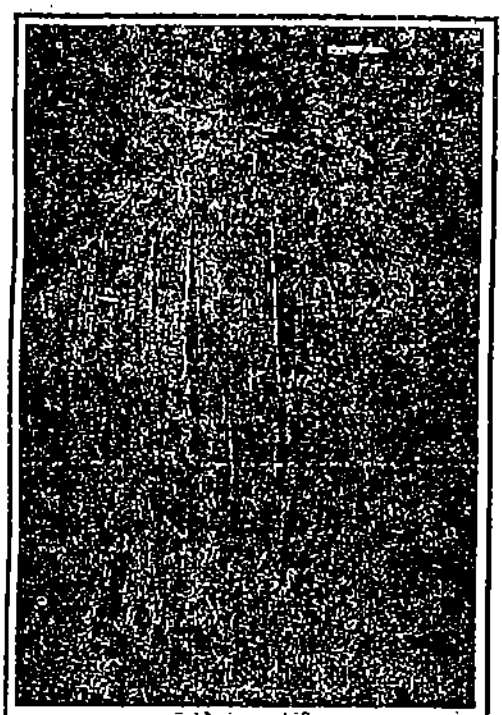

सफेद मूसली

सफेद मूसली को लगभग 9–10 महीने की फसल के रूप में लगाया जाता है। इसकी बिजाई इसके बीजों से भी की जा सकती है तथा कंदों से भी। बीजों की बजाए इसकी कंदों से बिजाई की जाना ज्यादा उपयुक्त पाया जाता है। इसकी खेती के लिये हल्की कंपासियां तथा रेतीली दोमट मिट्टियां ज्यादा उपयुक्त पाई गई हैं तथा इसे माह मई–जून में मेड़ों पर 6×6 इंच की दूरी पर लगाया जाता है। एक एकड़ में लगाने के लिये लगभग 40 से 60000 (लगभग 4 क्विंटल) ट्यूबर्स की जरूरत पड़ती है तथा इन ट्यूबर्स की कीमत (क्वालिटी के अनुसार) 400 रु. किलोग्राम से लेकर 500 रू. प्रति कि.ग्रा. तक हो सकती है। सिंचाई के लिये यदि स्प्रिंकलर सिस्टम अथवा ड्रिप पद्धति अपनाई जाए तो अपेक्षाकृत अच्छे परिणाम मिलने की संभावना होती है। सितम्बर तक इसके ऊपर के पत्ते सूख जाते हैं परन्तु इसकी हरवेस्टिंग अप्रैल–मई माह में

ही की जाती है। प्रायः एक एकड़ में 20 से 25 क्विंटल गीली (सूखने पर 4 से 5 क्विंटल) मूसली प्राप्त होती है जिसका बाजार भाव 700 रू. कि.ग्रा. से लेकर 1500 रु. (औसतन 1250 रु.) प्रति कि.ग्रा. तक रहता है। अच्छी गुणवत्ता का बीज लेकर बिजाई करने पर प्रति एकड़ लगभग 4 से 5 लाख तक का लाभ कमाया जा सकता है। यद्यपि मूसली काफी लाभकारी फसल है परन्तु किन्हीं बीज प्रदायकों तथा परामर्शदाताओं की जानकारी के आधार पर विभिन्न समाचार पत्रों, वेबसाइट्स, परामर्शदाताओं तथा बीज प्रदायकों द्वारा इसकी लाभप्रदता को काफी बढ़ा–चढ़ाकर वर्णित किया गया है। मूसली की खेती के इच्छुक किसानों को इसके विभिन्न पहलुओं का गहन अध्ययन करने के उपरान्त ही इस क्षेत्र में आना चाहिए।

कालमेघ

1.1.2 कालमेघ (*Andrographis paniculata*) : मिर्ची के आकार का पौधा कालमेघ विभिन्न रक्त विकारों, बुखार, पीलिया, लीवर इन्लार्जमेंट, मलेरिया ज्वर, चर्मरोगों, खून की कमी आदि के उपचार हेतु प्रयुक्त किया जाता है। कालमेघ की खेती हल्की काली कपासिया मिट्टी तथा उत्तम जल निकास वाली बलुई दोंमट मिट्टी में सफलतापूर्वक की जा सकती है। इसकी बिजाई बीजों से की जाती है जिसके लिये मई–जून माह में नर्सरी बनाई जाती है। एक एकड़ में खेती के लिये प्रति एकड़ लगभग 500 ग्राम बीज पर्याप्त होता है। नर्सरी से पौधे उखाड़ कर जून–जुलाई में खेत में रोपित कर दिए जाते हैं जिन्हें अक्टूबर–नवम्बर में उखाड़ कर सुखाकर पंचांग के रूप में बेच दिया जाता है। अच्छी खेती करने

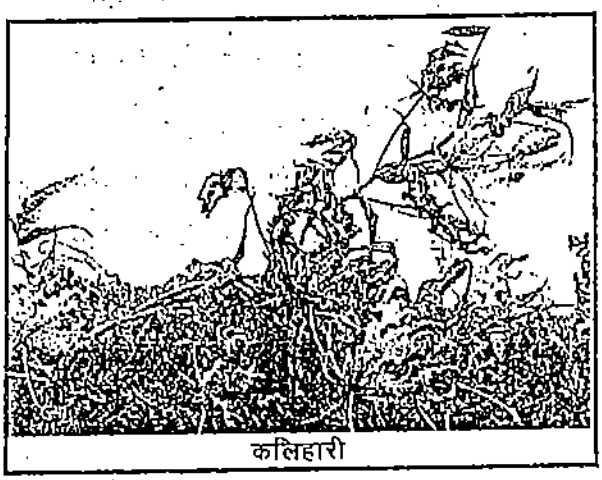
कलिहारी

पर प्रायः एक एकड़ में 12 से 15 क्विंटल पंचांग प्राप्त होता है जिसे यदि 1200 रु. प्रति क्विंटल की दर से विक्रीत कर दिया जाए तो इससे लगभग 18,000 रु. की प्राप्तियां होती हैं। समस्त कृषि कार्यों पर यदि 8000 रु. का व्यय (बीज की लागत, निराई–गुड़ाई, मजदूरी तथा ढुलाई की लागत आदि) माना जाए तो इस छः माह की फसल के प्रति एकड़ लगभग 10000 रू. का लाभ हो सकता है। क्योंकि कालमेघ का फुलाव (Volume) बहुत अधिक हो जाता है, अतः इसकी खेती वहीं ज्यादा सफल होगी जहां बाजार नजदीक में उपलब्ध हो।

1.1.3 कलिहारी (*Gloriosa superba*) : कलिहारी जिसे स्थानीय लोग लड़इन अथवा झगड़ईन के फूल के नाम से जानते हैं, अत्यधिक औषधीय उपयोग का पौधा है जिसके बीजों तथा कंदों का उपयोग गठिया तथा आमवात के साथ–साथ विभिन्न चर्मरोगों, गर्भपात, कुष्ठरोग, बवासीर, मासिक धर्म आदि से संबंधित विकारों के उपचार हेतु किया जाता है। देशीय बाजार के साथ–साथ अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भी इसकी काफी मांग होने के कारण कलिहारी की खेती करना काफी लाभकारी है। इसकी खेती लगभग सभी प्रकार की मिट्टियों (हल्की मिट्टी में भी) में की जा सकती है। कलिहारी की बिजाई इसके कंदों (ट्यूबर्स) से की जाती है। ये ट्यूबर्स 50 ग्राम से अधिक के वजन के होने चाहिए। एक एकड़ में लगाने के लिये लगभग 20,000 कंदों की जरूरत पड़ती है। तथा एक बार लगाकर ये कम से कम 5 वर्ष तक अच्छी फसल देते हैं।

गुड़मार की लताएं

कलिहारी की बिजाई का सर्वाधिक उपयुक्त समय जून–जुलाई माह (वर्षा ऋतु प्रारंभ होते ही) हैं तथा कंदों को जमीन में छः इंच से एक फुट तक गहरा रोपित किया जाता है क्योंकि कलिहारी एक लता है अतः इसक लिए आरोहण की व्यवस्था करना आवश्यक होता है। अगस्त–सितम्बर माह में

कलिहारी की लताओं पर फूल तथा फल आते हैं जो अक्टूबर–नवम्बर माह में पक जाते हैं फल पक जाने पर इन्हें तोड़ लिया जाता है तथा झाड़कर रख लिया जाता है। अच्छी फसल होने पर कलिहारी की खेती से प्रति एकड़ 100 कि.ग्रा. तक बीज प्राप्त हो जाते हैं जिनका बिक्री दर 400 रु. प्रति कि. ग्रा. मानी जाए तो इसे छः माह की फसल से लगभग 50000 रु. की प्राप्तियां होती हैं। केवल प्रथम वर्ष में ही ट्यूबर्स खरीदने पर खर्च आता है जबकि आगे के वर्षों में न तो ट्यूबर्स के खरीदने पर खर्च आता है तथा न ही उनकी बिजाई पर।

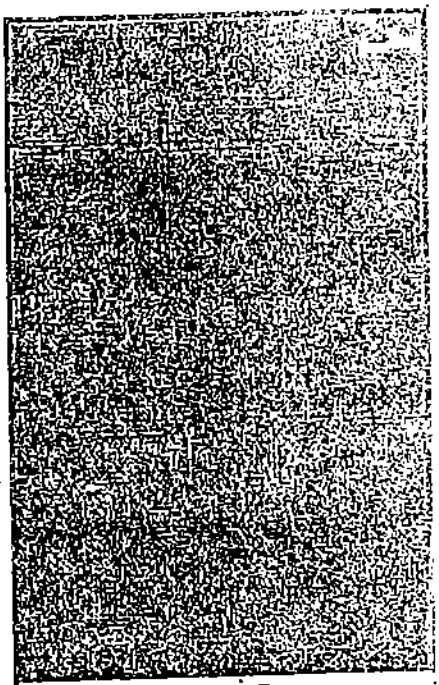
अश्वगंधा

1.1.4. गुड़मार (*Gymnema sylvestre*) : डायबिटीज अथवा मधुमेह के उपचार हेतु प्रयुक्त की जाने वाली बहुमूल्य जड़ी–बूटी गुड़मार अथवा मेषश्रृंगी यूं तो मध्य प्रदेश, राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश आदि राज्यों के जंगलों में बहुतायत में पाई जाती है परन्तु इसकी बढ़ती जा रही मांग तथा इसकी उपलब्धता में निरंतर हो रही कमी के कारण इसकी खेती करना एक लाभकारी व्यवसाय बनता जा रहा है। गुड़मार एक बहुवर्षीय लता है जिसके पत्ते तथा मूल औषधीय रूप में उपयोगी होते हैं। इसे बीज अथवा कलम से बरसात के मौसम में लगाया जाता है। लगा देने के उपरांत इसकी लताओं के आरोहण के लिये व्यवस्था करनी आवश्यक होती है। एक एकड़ में 5×3 फीट की दूरी पर इसके लगभग 3500 पौधे लगाए जा सकते हैं तथा तीसरे वर्ष में प्रतिवर्ष

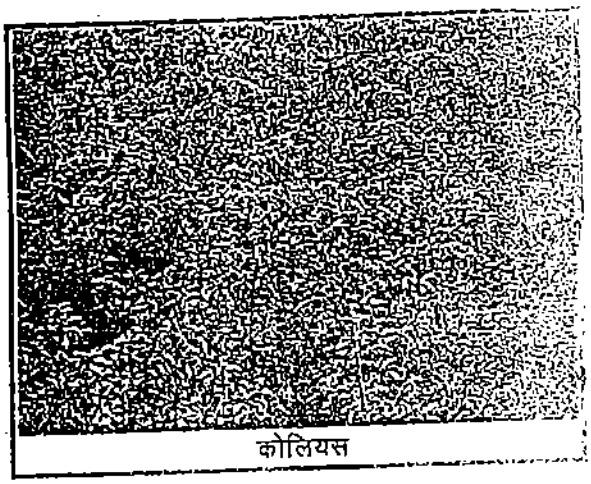
कोलियस

एक एकड़ में इसके लगभग 15 क्विंटल पत्ते प्राप्त होते हैं जिनका औसतन बिक्री मूल्य 15 से 20 रु. प्रति कि.ग्रा. रहता है। इस प्रकार एक बार लगा देने के उपरान्त गुड़मार को खेती से 25 वर्ष तक प्रतिवर्ष लगभग 20 से 25 हजार रु. की शुद्ध आय प्राप्त हो सकती है।

1.1.5 अश्वगंधा (*Withania somnifera*) : भारतवर्ष से जिन प्रमुख जड़ी–बूटियों का निर्यात होता है उनमें अश्वगंधा का प्रमुख स्थान है। मध्यप्रदेश का मंदसौर जिला अश्वगंधा उत्पादन में अपना विशेष स्थान रखता है। शक्तिवर्धक दवाइयों, गठिया के दर्द, जोड़ों की सूजन के उपचार में प्रयुक्त होने वाले इस पौधे की देश–विदेश में व्यापक मांग है।

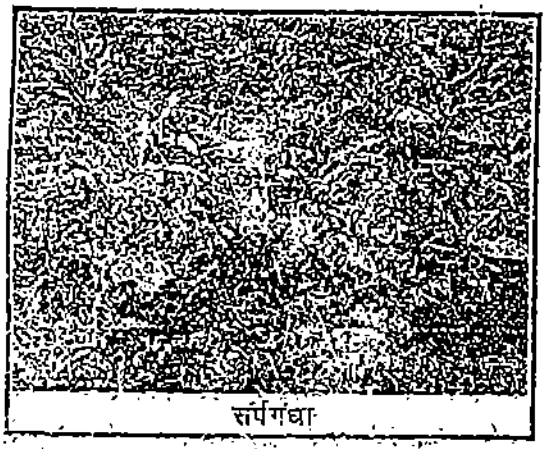
सर्पगंधा

एक एकेती खरीफ की फसल के रूप में अश्वगंधा की बिजाई अगस्त–सितम्बर माह में की जाती है। प्रायः बिजाई के लिए छिटकवां पद्धति का उपयोग किया जाता है तथा एक एकड़ की खेती के लिये 4 से 5 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त होता है। प्रायः बीज का भाव 50–60 रु. प्रति कि. ग्रा. रहता है।

अश्वगंधा की खेती पर ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता नहीं होती, यह हल्की जमीन में भी अच्छी प्रकार पनप सकता है तथा इसके लिए ज्यादा पानी की आवश्यकता भी नहीं होती यदि बरसात के बाद 2–3 सिंचाईयां भी दी जा सकें तो यह अच्छी उपज दे देती हैं। फरवरी–मार्च माह में इसके पौधे उखाड़ लिये जाते हैं जिनसे पत्ते बीज तथा जड़ें अलग कर दी जाती है तथा जिन्हें सुखा करके बेच दिया जाता है। प्रायः एक एकड़ की खेती में लगभग 2 क्विंटल सूखी जड़ें तथा 20–25 कि.ग्रा. बीज प्राप्त हो जाते हैं जिनसे अनुमानतः 12000 रु. की प्राप्तियां होती हैं। सारे खर्चे निकाल दिए जाने पर भी प्रति एकड़ लगभग 6 से 8 हजार रु. का शुद्ध लाभ प्राप्त हो सकता है।

1.1.6 कोलियस (*Coleus forskholi*) : कोलियस जो कि पत्थर चूर

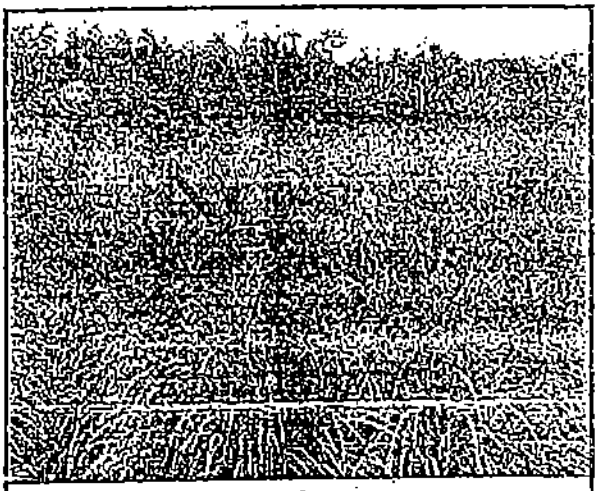
लेमनग्रास की फसल

अथवा पाषाण भेदी के रूप में भी जाना जाता है, अत्यधिक औषधीय उपयोग का पौधा है जिसका उपयोग हाइपरटेंशन दूर करने, कोलेस्ट्राल के नियंत्रण हेतु, ग्लूकोमा के उपचार हेतु तथा बालों के असमय पकने की समस्या के उपचार हेतु किया जाता है यह लगभग छः माह की फसल है तथा इसे कलमों द्वारा जून माह में लगाया जाता है कंदीय फसल होने के कारण इसकी खेती के लिये रेतीली मिट्टी ज्यादा उपयुक्त होती है।

अक्टूबर–नवम्बर माह में इसका संपूर्ण पौधा जड़ समेत उखाड़ लिया जाता है जिसमें से जड़ों को अलग करके सुखाकर वेच दिया जाता है। प्रायः एक एकड़ की खेती से लगभग 7 से 8 क्विंटल सूखी जड़ें प्राप्त होती हैं जिनकी यदि औसतन 35 रू. प्रति कि.ग्रा. की दर से बिक्री की जाए तो इसकी खेती से प्रति एकड़ 20 से 25000 रू. का शुद्ध लाभ प्राप्त हो जाता है।

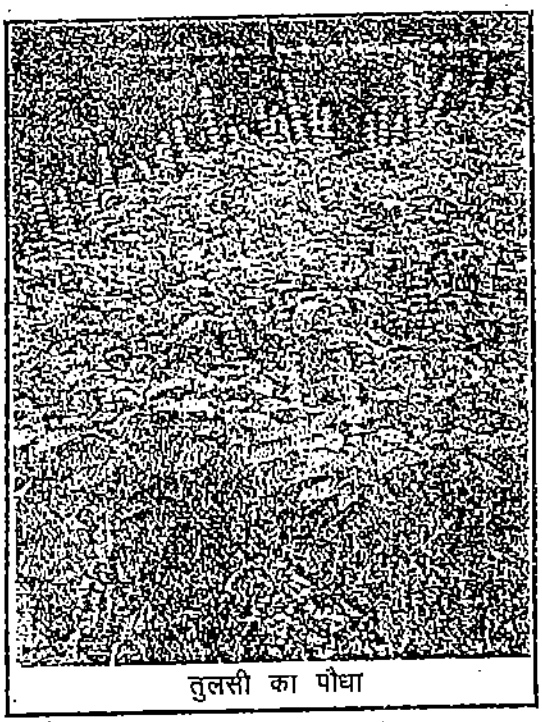
तुलसी का पौधा

1.1.7 सर्पगंधा (*Rauwolfia serpentina*) उच्च रक्तचाप, अनिद्रा, उन्माद, हिस्टीरिया आदि जैसे अनेकों विकारों के उपचार हेतु अत्यधिक कारगर जड़ी–बूटी सर्पगंधा छत्तीसगढ़ तथा झारखण्ड के राज्यों के जंगलों में प्राकृतिक रूप से पाई जाती है तथा जंगलों से इसकी उपलब्धता में निरंतर कमी होने तथा विदेशों में इसकी

मांग बढ़ने के कारण इसके कृषिकरण की आवश्यकता महसूस हुई है। सर्पगंधा की फसल 18 माह की फसल के रूप में ली जाती है। इसकी फसल के लिये रेतीली दोमट मिट्टी ज्यादा उपयुक्त पाई गई है तथा इसकी बिजाई बीजों से की जाती है जिसके लिये एक एकड़ हेतु 2.5 से 3 कि.ग्रा. बीजों की नर्सरी बनाई जाती है। नर्सरी में पौधे डेढ़ से दो माह के हो जाने पर इन्हें मुख्य खेत में रोपित कर दिया जाता है अठारह महीने की अवधि पूरी होने जाने पर इसकी जड़े खोदकर निकाल ली जाती हैं जिन्हें सुखा करके बेच दिया जाता है। प्रायः एक एकड़ की खेती से औसतन 7 क्विंटल जड़ें प्राप्त हो जाती हैं जिनकी 80–90 रू. प्रति कि.ग्रा. की दर से बिक्री की जाए तो इससे 50000 रू. की प्राप्तियां होंगी। व्यापक राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय बाजार होने के कारण सर्पगंधा की खेती करना काफी लाभकारी हो सकता है।

सतावर

1.1.8 लेमनग्रास (*Cymbopogan flexuosis*) : लेमनग्रास एक बहुवर्षीय सुगंधीय घास है जिससे निकलने वाले तेल का उपयोग विभिन्न सौन्दर्य प्रसाधनों एवं साबुन आदि में किया जाता है। एक बार लगा देने के उपरान्त यह पांच वर्ष तक अच्छी फसल देती हैं। इसकी बिजाई इसकी स्लिप्स से की जाती है तथा एक एकड़ में लगाने के लिये लगभग 20 हजार स्लिप्स पर्याप्त होती है। वर्तमान में मध्यप्रदेश में 150 से अधिक किसान इसकी खेती कर रहे हैं। इसकी कटाई करने के उपरान्त इसके पत्तों का तेल निकाला जाता है। प्रथम कटाई फसल लगाने के लगभग छः माह के उपरान्त आती है जबकि आगे की कटाइयां प्रति 80–90 दिन के उपरान्त आती जाती है। इस प्रकार प्रथम वर्ष में लगभग 50 किलोग्राम तथा आगे के वर्षों में प्रति वर्ष लगभग 100 किलोग्राम तेल किसान को प्राप्त होता है जिसकी बिक्री दर लगभग 350 रु. प्रति किलोग्राम रहती है। इस प्रकार

प्रतिवर्ष किसान को औसतन 25 हजार रु. का लाभ प्राप्त होता है। इस फसल की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें खरपतवारों की कोई विशेष समस्या नहीं होती, यह बहुधा बीमारियों तथा रोगों से मुक्त है तथा इसे बार–बार लगाना नहीं पड़ता। अतः किसान को इस पर बार–बार खर्च करने की आवश्यकता नहीं होती। इस फसल में प्रत्येक 12 से 15 दिन के बीच एक सिंचाई करने की आवश्यकता होती है।

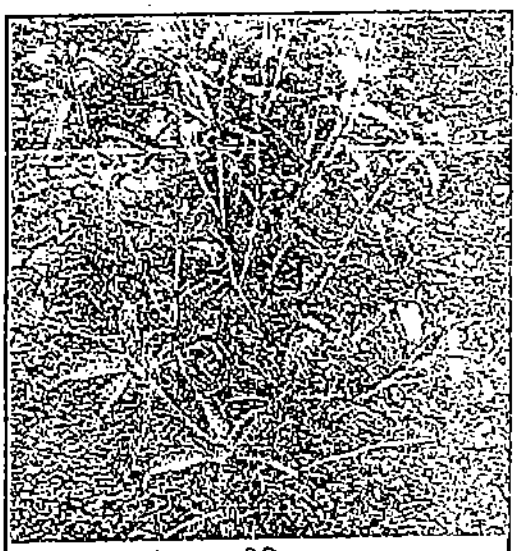
स्टीविया

1.1.9 तुलसी (*Ocimum sanctum*) : तुलसी की खेती एक वर्षीय फसल के रूप में भी की जा सकती है तथा तीन माह की फसल के रूप में भी। प्रायः जहां सिंचाई की कम व्यवस्था हो वहां इसे तीन माह की फसल के रूप में लिया जा सकता है जिसके लिए इसकी सर्वाधिक उपयुक्त किस्म है– *ओसिमम बेसिलकम* अथवा बेसिल तुलसी अथवा सौंफ वाली तुलसी। इसके पत्तों से तेल निकाला जाता है। जिसका उपयोग टूथपेस्ट एवं सुगंधीय पदार्थ बनाने हेतु किया जाता है। इसकी खेती बीजों से नर्सरी बनाकर की जाती है तथा एक एकड़ की खेती के लिये लगभग 500 ग्राम बीज पर्याप्त होता है। ऐसे क्षेत्र में जहां तीन माह (जुलाई–अगस्त–सितम्बर) के लिये किसान का खेत खाली हो वहां इसकी खेती करके अतिरिक्त लाभ कमाया जा सकता है। प्रायः इसकी नर्सरी मई–जून में तैयार करके जुलाई–अगस्त–सितम्बर में इसकी एक फसल ली जा सकती है। इसकी एक कटाई से लगभग 50 किलोग्राम तेल प्राप्त होता है जिसकी वर्तमान में बिक्री दर लगभग 200 से 250 रु.

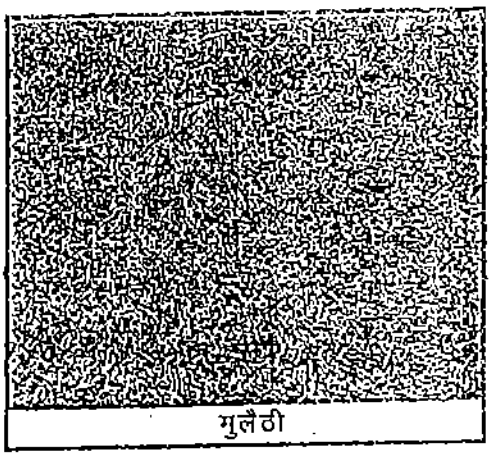
मुलैठी

प्रति किलोग्राम है। इस प्रकार मात्र तीन माह की फसल से किसान को 8 से 10 हजार रु. का शुद्ध लाभ प्राप्त हो सकता है।

1.1.10 सतावर (*Asparagus racemosus*) : सतावर अथवा शतावरी भारत वर्ष के विभिन्न भागों में प्राकृतिक रूप से पाई जाने वाली बहुवर्षीय आरोही लता है सतावर की पूर्ण विकसित लता 30 से 35 फिट तक ऊँची होती है। प्रायः जड़ों से इसकी कई लताएं अथवा शाखाएं एक साथ निकलती हैं यह लता की तरह बढ़ती है लेकिन इसकी शाखाएं काफी कठोर (लकड़ी जैसे) होती है। इसके पत्ते काफी पतले सूइयों जैसे नुकीले होते हैं। इनके साथ–साथ इनमें छोटे–छोटे कांटे भी होते हैं। सतावर भारतीय चिकित्सा पद्धतियों में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख औषधीय पौधों में से एक है। सतावर का मुख्य उपयोगी भाग इसकी जड़ें होती हैं जो प्रायः 6 से 9 इंच तक भूमि में जाती हैं प्रायः 24 माह की सतावर की फसल से प्रति एकड़ लगभग 25000 कि.ग्रा. गीली ट्यूबर्स प्राप्त होती है जो कि साफ करने तथा छीलने व सुखाने उपरान्त 25 कुन्तल रह जाती है। जिससे लगभग 34000 रु. का शुद्ध लाभ प्रति एकड़ प्राप्त होता है। इस फसल की प्रमुख विशेषता यह है कि इससे ज्यादा सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। यदि माह में एक बार सिंचाई की व्यवस्था हो जाये तो ट्यूबर्स (जड़ों) का अच्छा विकास हो जाता है।

1.1.11 स्टीविया (*Stevia rebaudiana*) : स्टीविया रीवाउदिआना मूलतः मध्य पेरूग्वे का पौधा है जहां यह तालाबों अथवा नालों के किनारों पर प्राकृतिक रूप से उगता है। चीनी तुलसी, मधुपत्र अथवा मीठे पौधे के रूप में जाना जाने वाला यह पौधा अपनी सामान्य अवस्था में आम शक्कर से लगभग 25 से 30 गुना ज्यादा मीठा होता है जबकि इससे निकाला जाने वाला एक्सट्रैक्ट शक्कर से लगभग 300 गुना ज्यादा मीठा होता है। स्टीविया का कृषिकरण सर्वप्रथम जापान में प्रारंभ हुआ जहां जापानियों ने इसे पचास के

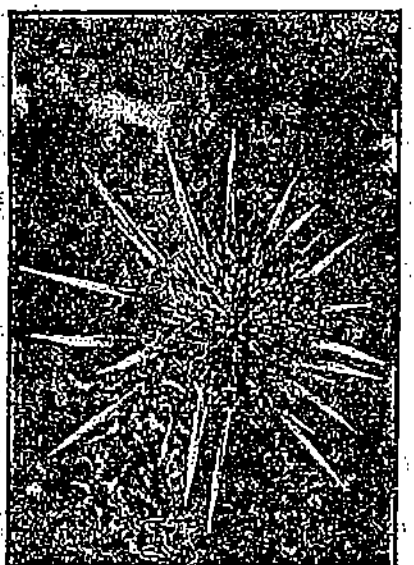

मिल्क–थिस्टल

दशक में व्यवसायिक कृषि की दृष्टि से अपनाया तथा उन्होंने इसकी कई उन्नतशील प्रजातियां विकसित की। वर्तमान में इसकी व्यवसायिक खेती मुख्यतया जापान, पेरूग्वे, कोरिया, ताईवान, अमेरिका तथा दक्षिणी एशियाई देशों में की जा रही है। भारतवर्ष के विभिन्न भागों में भी इसकी खेती प्रारंभ हो चुकी है।

स्टीविया का पौधा लगभग 60 से 70 से.मी. ऊँचा एक बहुवर्षीय तथा बहुशाखीय झाड़ीनुमा पौधा है। प्राकृतिक अवस्था में यह पौधा 11 से 41 अंश तक के तापक्रम में सफलतापूर्वक पनपता देखा जा सकता है जबकि इसकी कुछ प्रजातियां (विशेषतया इसकी नवीन तथा उन्नत प्रजातियाँ) 45 अंश तक के तापमान में भी अच्छी प्रकार पनप जाती है। स्टीविया के पत्ते का स्वाद मीठा होता है। इसके पत्तों में पाए जाने वाले प्रमुख घटक हैं– स्टीवियोसाइड, रोबाउदिसं, रोबाउदिसाइड सी, डुलकोसाइड, तथा छः अन्य यौगिक। इन यौगिकों में इन्सुलिन को बैलेंस करने के गुण पाए जाते हैं जिसके कारण इसे मधुमेह रोगियों के लिए उपयोगी माना गया है वैसे इसका सर्वाधिक उपयोगी घटक स्टीवियोसाइड है जिनकी मात्रा इसके सूखे पत्तों में 3 से 20 प्रतिशत तक हो सकती हैं प्रायः 9 प्रतिशत तथा इससे अधिक स्टीवियोसाइड वाले स्टीविया के पत्तों को अच्छी गुणवत्ता का माना जाता है।

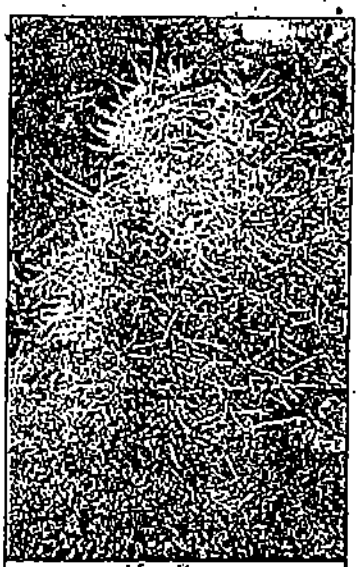
भुंई आँवला

स्टीविया की खेती से प्रति एकड़ औसतन 2.5 टन पत्तों का उत्पादन होता है। इसकी खेती से किसान को प्रतिवर्ष लगभग 2.5 लाख रुपया प्रति एकड़ की प्राप्तियां होती हैं।

1.1.12 मुलैठी (*Glycyrrhiza glabra*) : मुलैठी का पौधा एक बहुवर्षीय पौधा होता है जिसकी अधिकतम ऊंचाई छः फुट तक होती है। इसका मूल लम्बा, झुर्रीदार तथा धूसरवर्ण होता है जिसका छिलका हटाने पर नीचे हल्का पीला रेशेदार पदार्थ निकलता है। इसके मूल तथा काण्ड से अनेकों शाखाएं तथा प्रशाखाएं निकलती हैं। इस पर गुलाबी अथवा बैंगनी

रंग के फूल निकलते हैं। औषधीय उपयोग में मुख्यतया इसकी जड़ों तथा भूमिगत तने को सुखा कर उपयोग में लाया जाता है। मुलैठी का प्रमुख रासायनिक घटक ग्लिसिराइजिन (Glycyrrhizin) नामक तत्व होता है जो ग्लिसिराइज़िक एसिड के रूप में मिलता है। यह चीनी से 50 गुना ज्यादा मीठा होता है तथा मुलैठी की विभिन्न जातियों में 2 से 14 प्रतिशत तक होता है। मुलैठी की खेती से प्रति एकड़ औसतन 22 क्विंटल सूखी जड़ें प्राप्त होती हैं इस फसल से 50,000 रु. का शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है। सूखी जड़ों की प्राप्ति के साथ–साथ इस फसल से और भी कई प्रकार की प्राप्तियां होती हैं। उदाहरणार्थ फसल खोद लिए जाने के उपरान्त भूमि में जो जड़ें बच जाती हैं वे पुनः बिजाई में प्रयुक्त हो जाती है। इनके साथ–साथ प्रारंभिक वर्षों में मुलैठी के बीच में दूसरी फसलों की इन्टरक्रॉपिंग भी की जा सकती है, जिससे अतिरिक्त लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार व्यवसायिक रूप से मुलैठी काफी लाभकारी फसल है। विशेष रूप से इसलिए भी क्योंकि अभी हमारे देश में इसकी आपूर्ति आयात के माध्यम से हो रही है, अतः इसके विपणन में किसी प्रकार की कठिनाई आने की संभावना नहीं है। इस दृष्टि से विशेष रूप से मध्य भारत के किसानों के लिए मुलैठी उनका भविष्य बदलने वाली फसल सिद्ध हो सकती है।

बेल का पेड़

1.1.13 मिल्क–थिस्टल (*Silybum marianum*) : मिल्क थिस्टल एक वर्ष की आयु वाला कांटे युक्त पौधा होता है जिसकी ऊंचाई लगभग 4 से 5 फीट तक होती है। इसकी पत्तियों की लंबाई 1 से 2 फीट होती है। ये पत्तियां कंटीली होती हैं तथा जमीन पर फैली होती हैं इन पत्तियों के बीचों–बीच एक पुष्पक्रम निकलता है जिसमें गुच्छों में फूल आते हैं जोकि बैंगनी रंग के होते हैं इसका फूल काफी सुन्दर दिखता है तथा पक जाने पर इसमें बीज बनते हैं। इनके बीजों का रंग भूरा–मटमैला होता है तथा ये बीज

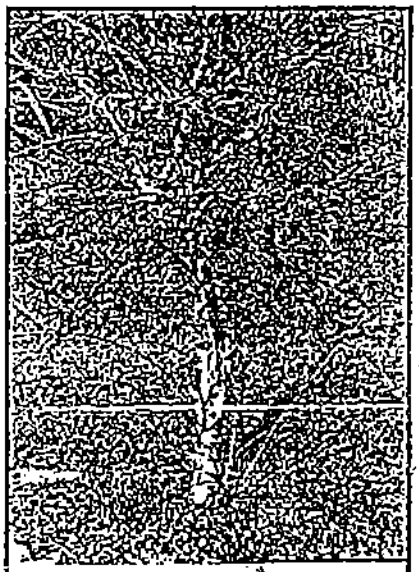
गुग्गुल का पौधा

बीच में चपटे होते हैं। औषधीय उपयोग हेतु मुख्यतया इसके बीजों का ही उपयोग किया जाता है। जर्मनी के स्वास्थ्य विभाग द्वारा मिल्क थिस्टल उत्पादों का उपयोग लीवर से संबंधित पुरानी बीमारियों जैसे हेपटाइटिस, सीरॉसिस, शराब अथवा अन्य मादक पदार्थों के अत्यधिक सेवन से उत्पन्न हुए फैटी इन्फिलट्रेशन आदि के उपचार में सहायक उपचार के रूप में अनुमोदित किया गया है। वर्तमान में अमेरीकी बाजार तथा अन्य यूरोपीय बाजारों में ऐसी अनेकों दवाइयां प्रचलन तथा मांग में हैं जिनमें मिल्क थिस्टल अथवा इसके कार्यकारी तत्व जैसे सिलीमेरीन तथा सिलीबीन का उपयोग हो रहा है। उपरोक्तानुसार वर्णित लीवर के विभिन्न विकारों के साथ–साथ मिल्क थिस्टल का उपयोग बुखार, मलेरिया, मूत्र संबंधी विकारों तथा मधुमेह आदि में भी किया जा रहा है। क्योंकि इस पौधे की अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में पहले से ही उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है अतः देशीय बाजारों के साथ–साथ इसके लिए अंतर्राष्ट्रीय बाजार भी प्राप्त किए जा सकते है। मिल्क थिस्टल की एक औसत फसल से प्रति एकड़ औसतन 6 क्विंटल बीज प्राप्त होता है जिससे लगभग 5 माह में 18000 रु. प्रति एकड़ की प्राप्तियां होती हैं।

1.1.14. भुंई आमला (*Phyllanthus amarus* Schumothon) : भुंई आंवला अथवा भुंई आंमला भूंआमलकी एरन्ड कुल का लगभग 1.5 फीट से 2 फीट ऊंचा एक वर्षीय पौधा होता है जो बरसात के समय खेतों में खरपतवार के रूप में स्वयंमेव उगता दिखाई देता है। यद्यपि आंवला की तुलना में यह पौधा बहुत छोटा होता है परंतु आंवला के पौधे जैसे पत्तों तथा पत्तों के पीछे छोटे–छोटे आंवला जैसे फल लगने के कारण ही संभवतया इसको जमीन का आंवला अथवा भुंई आंमला कहा जाता है। अधिकांशतः बंजर जमीनों के साथ–साथ खेतों में वर्षाऋतु में खरपतवार के रूप में उगने वाले पौधे भुंई आंमला के उत्पत्ति स्थल अमेरिका माना जाता है।

पिप्पली का पौधा

भुंई आंमला का संपूर्ण पंचांग औषधीय उपयोग का होता है भारतवर्ष में यह लगभग सभी क्षेत्रों में बहुतायत में खरपतवार के रूप में मिलता है जिसे लोक परंपराओं के अनुसार लीवर से संबंधित विकारों विशेषतया पीलिया तथा हेपटाइटिस–बी के उपचार हेतु प्रयुक्त किया जाता है। समय पर उखड़ाई हो जाने पर प्रतिएकड़ औसतन 10 क्विंटल सूखी शाक प्राप्त होती है जिससे लगभग 4–4.5 माह में 15 हजार रु. की प्राप्तियां होती हैं।

भुंई आंमला की फसल कम उपजाऊ क्षेत्रों में काफी कम खर्च तथा प्रयासों से की जा सकती हैं। इसका बाजार भी आसानी से प्राप्त हो सकता है तथा दूसरी फसलों के बीच में इन्टरक्रापिंग के रूप में भी यह सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है जिससे इसकी खेती पर अतिरिक्त खर्च करने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती।

1.1.15 बेल (*Aegle marmelos* Corr.) : बेल मुख्यतया भारत एवं मलेशियाई क्षेत्रों में पाया जाने वाला बहुवर्षीय गुल्म है। संपूर्ण भारतवर्ष में ज्यादा वर्षा तथा ज्यादा सूखे वाले क्षेत्रों को छोड़कर यह गुल्म प्राकृतिक रूप में सर्वत्र पाया जाता है। मध्यम आकार का, 25 से 30 फुट ऊंचा यह कांटेदार बहुवर्षी गुल्म बहुत ही सहनशील प्रकृति का होता है यद्यपि इसकी अच्छी बढ़त के लि - से 8 पी.एच. मान वाली भूमि ज्यादा अच्छी रहती है परंतु यह किसी भी प्रका भूमि जैसे बरानी, परती, ऊसर तथा कंकरीली आदि में भी जिनका पी.एच. 11 तक भी हो, उपजाया जा सकता है। धार्मिक महत्व के साथ–साथ षधीय दृष्टि से भी काफी उपयोगी है। मुख्यतया इसके जो भाग ज्यादा औ पयोग में लाए जाते हैं, – पत्ते, फल तथा छाल। बेल के पत्ते तथा इसक म टहनियां दस्त व पेचिश जैसे रोगों में प्रयुक्त होते हैं। इसकी पत्तियां शहद के साथ सेवन करने से मधुमेह में लाभ होता है तथा इन्हें शहद के साथ सेवन करने से मधुमेह में लाभ होता है तथा इन्हें मिश्री के चूर्ण के साथ सेवन करने से स्मरण शक्ति बढ़ती है। उपचार में भी इनका

प्रसारण होता है। इसकी पत्तियां पान के पत्तों के आकार की होती हैं जिनकी लंबाई प्रायः 5 से 7 सें.मी. होती है। वर्षा ऋतु में इसके पौधों पर फूल आते हैं जिनमें शरद ऋतु में फल तैयार होते हैं। प्रारंभ में इसके फल हल्के पीले रंग के होते हैं जो पकने पर हरे तथा अंततः कृष्णाभ धूसरवर्ण के हो जाते हैं। इसके फलों पर छोटे–छोटे गोल उभार पाए जाते हैं जो देखने में शहतूत के फलों के जैसे प्रतीत होते हैं। औषधीय उपयोग हेतु यही सूखे फल तथा पौधे का मूल प्रयुक्त किया जाता है। पिप्पली के सूखे फलों में 4 से 5 प्रतिशत तक पाइपरीन तथा पिपलार्टिन नामक एल्केलाइड पाए जाते हैं। इनके अतिरिक्त इनमें सिसेमिन तथा पिपलास्टिरॉल भी पाए जाते हैं। पिप्पली की जड़ों में पाइपरिन (0.15 से 0.18 प्रतिशत), पिपलार्टिन (0.13 से 0.20 प्रतिशत), पाइपरलौंगुमिनिन (0.2 से 0.25 प्रतिशत तथा पाइपन लौंगुमाइन (0.02 प्रतिशत) पाए जाते हैं। इसमें एक सुगंधीय तेल (0.7 प्रतिशत) भी पाया जाता है जोकि कालीमिर्च तथा अदरक के तेल जैसी खुशबू लिए होता है। पिप्पली का मुख्य औषधीय उपयोग अस्थमा, खांसी, गैस, अतिसार अथवा दस्त होने की स्थिति में, थकान, यौन कमजोरी के निवारण, गले के संक्रमण तथा पेट विकारों में अत्यधिक उपयोगी है। इसका उत्पाद लवण भास्कर चूर्ण है जो पिप्पली के फलों तथा मूल, धनिया, जीरा तथा सेंधा नमक मिलाकर तैयार किया जाता है। इसका व्यवसायिक उपयोग मसाले के रूप में किया जाता है। प्रथम वर्ष में पिप्पली की फसल से प्रति एकड़ लगभग 2 कुन्तल सूखे फल प्राप्त होते हैं जो कि तीसरे से पांचवें वर्ष में प्रति एकड़ 6 कुन्तल प्रति वर्ष प्राप्त हो सकते हैं। पांचवें वर्ष में प्रति एकड़ लगभग 200 किग्रा पिप्पलामूल भी प्राप्त हो जाता है पिप्पली के सूखे फलों की बिक्री दर 6.–100 रु. प्रति किग्रा तथा पिप्पलामूल की बिक्री दर 150 रु. प्रति किग्रा होती है। पिप्पली की फसल

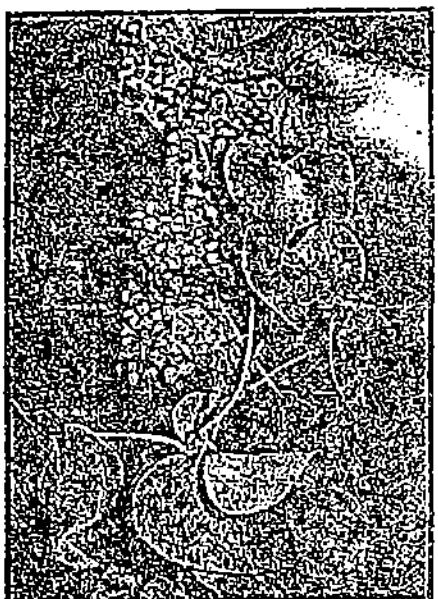

गिलोय

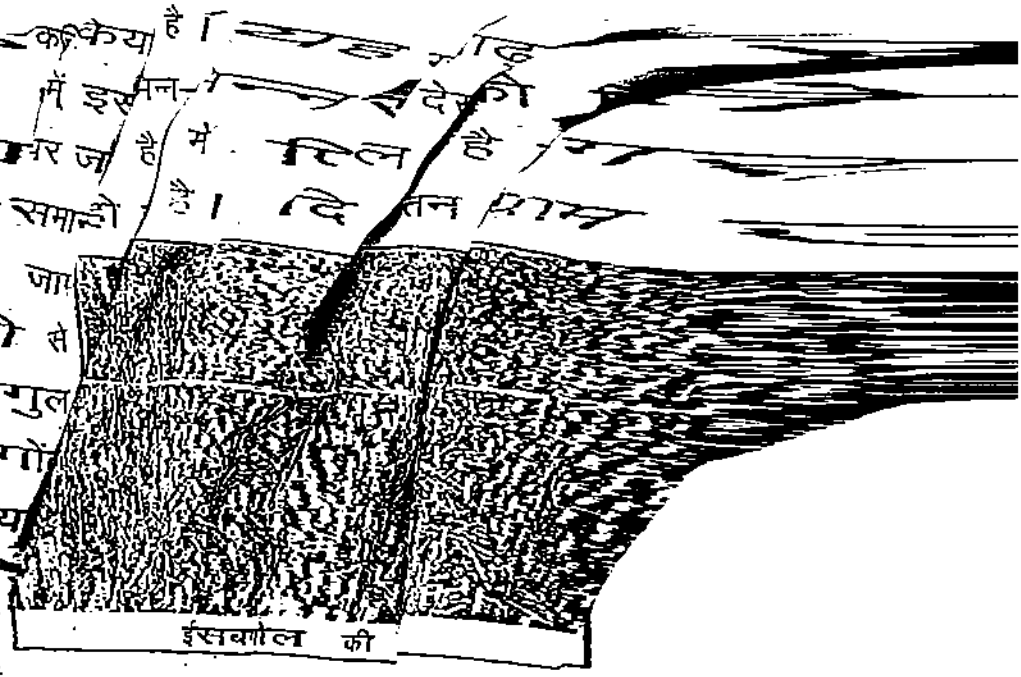

ईसबगोल की

होंगी। जोकि अगले वर्ष के उपरान्त एक वर्ष छोड़कर लंबे समय तक आगे लगातार प्राप्त होती रहेंगी।

निःसन्देह औषधीय एवं व्यवसायिक दृष्टि से गुग्गुल काफी उपयोगी पौधा है। वनों से इसकी उपलब्धता में निरन्तर हो रही कमी के कारण इसका कृषिकरण काफी उपयोगी हो गया है। इसकी खेती से जुड़े कई पहलू अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं जैसे कम पानी में भी इसकी खेती करने की संभावना कम उपजाऊ जमीनों में भी इसकी खेती संभव होना तथा इसके लिए व्यापक बाजार उपलब्ध होना। हालांकि इसकी प्रथम उपज प्राप्त करने में काफी लंबा समय (आठ वर्ष का) लग जाता है परन्तु इस दौरान संबंधित खेत में कई अंर्तवर्षीय फसलें ली जा सकती हैं। क्योंकि वर्ष के अधिकांश भाग में गुग्गुलु के पौधों पर पत्ते नहीं रहते अतः इसके बीच लगभग सभी प्रकार की फसलें, चाहे वे परम्परागत हों अथवा औषधीय, ली जा सकती हैं। इस प्रकार संबंधित खेत का पूरा उपयोग हो जाता है तथा किसान को आठ वर्ष तक पहली फसल का इंतजार भी नहीं करना पड़ता।

1.1.17 पिप्पली (*Piper longum*) : पिप्पली एक गन्धयुक्त लता होती है जो भूमि पर फैलती है अथवा दूसरे वृक्षों के सहारे ऊपर उठती हैं इसके रेंगने वाले काण्डों से उपमूल निकलते हैं जिनसे इसका आरोहन तथा

धारा लगाकर एकत्रित किया जाता है। यह गोंद गाढ़ा तथा सुगंन्धित होता है तथा विभिन्न क्षेत्रों में इसके भिन्न–भिन्न रंग देखने को मिलते हैं। यह गोंद अग्नि में डालने पर जलता है, धूप में पिघल जाता है तथा गरम जल में डालने पर दूध के समान हो जाता है। यदि औसतन 500 ग्राम उपज (गोंद) प्रति पौधा माना जाए तो एक एकड़ की खेती से लगभग 500 कि.ग्रा. गुग्गुल गोंद प्राप्त होगी। इस गोंद की औसतन बिक्री दर यदि 100 रु. प्रति कि.ग्रा. मानी जाए तो इस खेती से प्रति एकड़ 50000 रु. की प्राप्तियां होंगी। जोकि आठवें वर्ष के उपरान्त एक वर्ष छोड़कर काफी लंबे समय तक आगे लगातार प्राप्त होती रहेंगी।

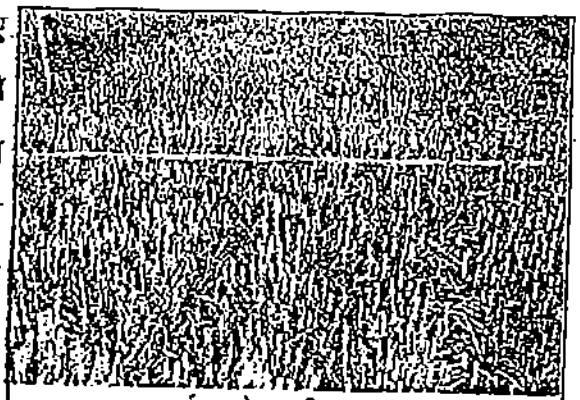
ईसबगोल की फसल

निःसन्देह औषधीय एवं व्यवसायिक दृष्टि से गुग्गुलु काफी उपयोगी पौधा है। वनों से इसकी उपलब्धता में निरन्तर हो रही कमी के कारण इसका कृषिकरण काफी उपयोगी हो गया है। इसकी खेती से जुड़े कई पहलू अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं जैसे कम पानी में भी इसकी खेती करने की संभावना कम उपजाऊ जमीनों में भी इसकी खेती संभव होना; तथा इसके लिए व्यापक बाजार उपलब्ध होना। हालांकि इसकी प्रथम उपज प्राप्त करने में काफी लंबा समय (आठ वर्ष का) लग जाता है परन्तु इस दौरान संबंधित खेत में कई अंर्तवर्षीय फसलें ली जा सकती हैं। क्योंकि वर्ष के अधिकांश भाग में गुग्गुलु के पौधों पर पत्ते नहीं रहते अतः इसके बीच लगभग सभी प्रकार की फसलें, चाहे वे परम्परागत हों अथवा औषधीय, ली जा सकती हैं। इस प्रकार संबंधित खेत का पूरा उपयोग हो जाता है तथा किसान को आठ वर्ष तक पहली फसल का इंतजार भी नहीं करना पड़ता।

1.1.17 पिप्पली (*Piper longum*) : पिप्पली एक गन्धयुक्त लता होती है जो भूमि पर फैलती है अथवा दूसरे वृक्षों के सहारे ऊपर उठती हैं इसके रेंगने वाले काण्डों से उपमूल निकलते हैं जिनसे इसका आरोहन तथा

प्रसारण होता है। इसकी पत्तियां पान के पत्तों के आकार की होती हैं जिनकी लंबाई प्रायः 5 से 7 सें.मी. होती है। वर्षा ऋतु में इसके पौधों पर फूल आते हैं जिनमें शरद ऋतु में फल तैयार होते हैं। प्रारंभ में इसके फल हल्के पीले रंग के होते हैं जो पकने पर हरे तथा अंततः कृष्णाभ धूसरवर्ण के हो जाते हैं। इसके फलों पर छोटे–छोटे गोल उभार पाए जाते हैं जो देखने में शहतूत के फलों के जैसे प्रतीत होते हैं। औषधीय उपयोग हेतु यही सूखे फल तथा पौधे का मूल प्रयुक्त किया जाता है। पिप्पली के सूखे फलों में 4 से 5 प्रतिशत तक पाइपरीन तथा पिपलार्टिन नामक एल्केलाइड पाए जाते हैं। इनके अतिरिक्त इनमें सिसेमिन तथा पिपलास्टिरॉल भी पाए जाते हैं। पिप्पली की जड़ों में पाइपरिन (0.15 से 0.18 प्रतिशत), पिपलार्टिन (0.13 से 0.20 प्रतिशत), पाइपरलौंगुमिनिन (0.2 से 0.25 प्रतिशत तथा पाइपन लौंगुमाइन (0.02 प्रतिशत) पाए जाते हैं। इसमें एक सुगंधीय तेल (0.7 प्रतिशत) भी पाया जाता है जोकि कालीमिर्च तथा अदरक के तेल जैसी खुशबू लिए होता है। पिप्पली का मुख्य औषधीय उपयोग अस्थमा, खांसी, गैस, अतिसार अथवा दस्त होने की स्थिति में, थकान, यौन कमजोरी के निवारण, गले के संक्रमण तथा पेट विकारों में अत्यधिक उपयोगी है। इसका उत्पाद लवण भास्कर चूर्ण है जो पिप्पली के फलों तथा मूल, धनिया, जीरा तथा सेंधा नमक मिलाकर तैयार किया जाता है। इसका व्यवसायिक उपयोग मसाले के रूप में किया जाता है। प्रथम वर्ष में पिप्पली की फसल से प्रति एकड़ लगभग 2 कुन्तल सूखे फल प्राप्त होते हैं जो कि तीसरे से पांचवें वर्ष में प्रति एकड़ 6 कुन्तल प्रति वर्ष प्राप्त हो सकते हैं। पांचवें वर्ष में प्रति एकड़ लगभग 200 किग्रा पिप्पलामूल भी प्राप्त हो जाता है पिप्पली के सूखे फलों की बिक्री दर 6.–100 रु. प्रति किग्रा तथा पिप्पलामूल की बिक्री दर 150 रु. प्रति किग्रा होती है। पिप्पली की फसल

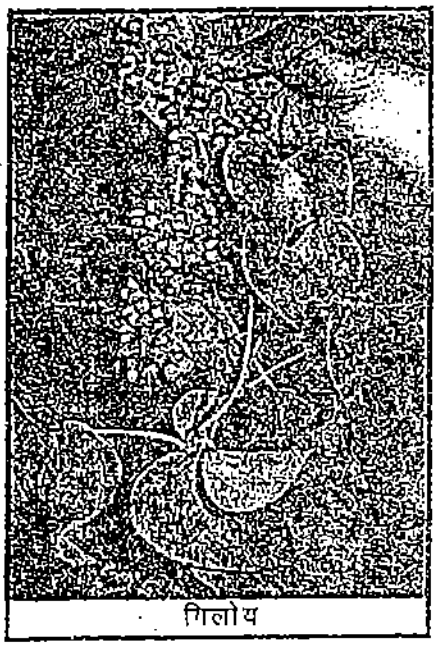
गिलोय

से प्रथम वर्ष में लगभग 30,000 रु. तथा पांचवें वर्ष में 45000 रु. प्रति एकड़ की प्राप्ति होती है।

1.1.18 सनाय (*Cassia angustifolia*) : सनाय, सोनामुखी अथवा सेन्ना एक ऐसा औषधीय पौधा है जिसे भारतवर्ष के लिए प्रमुख "डॉलर अर्नर" पौधे के रूप में जाना जा रहा है। यूं तो यह सोमालीलैंड (अफ्रीका) तथा अरब का मूल निवासी पौधा है तथा संभवतया वहीं से यह भारत में आया है परन्तु भारतवर्ष की ऊसर पड़ी हुई भूमियों एवं सूखे क्षेत्रों में यह काफी सफल रहा है तथा इसे एक ऐसे औषधीय पौधे के रूप में देखा जा रहा है। जो भारत के सूखे क्षेत्रों में सोना उगाने जैसी बात साबित हो सकता है।

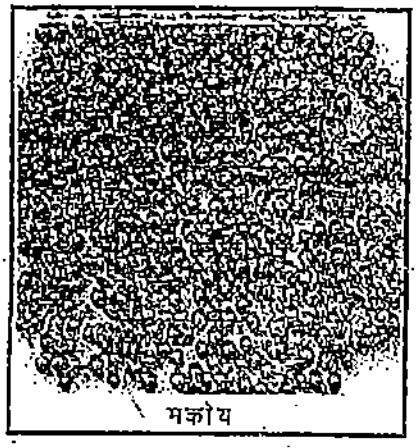
मक्कोय

सनाय की पत्तियों एवं फलियों में मुख्य रूप से सेनासाइड 'ए' तथा 'बी' नामक ग्लाइकोसाइड्स पाए जाते हैं। इनके अतिरिक्त पत्तियों में ग्लूकोज, फ्रक्टोज़ तथा मिनिटोल भी पाए जाते हैं। कुछ मात्रा में सेनोसाइड 'सी' भी पाया जाता है। सनाय में जिन अन्य यौगिकों की उपस्थिति देखी गई है उनमें प्रमुख हैं मैनिटॉल, पोटैशियम टारटरेट। प्रायः पत्तियों की अपेक्षा सेनासाइड्स की मात्रा फलियों में अधिक होती है। यूं तो पत्तियों एवं फलियों में पाई जाने वाली सेनासाइड्स की मात्रा 1.2 से 2.5 प्रतिशत तक होती है। परन्तु किन्हीं क्षेत्रों विशेषतया राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में इसकी मात्रा 3.5 प्रतिशत से 5 प्रतिशत तक भी दर्ज की गई है। सेनोसाइड के एक्सट्रेक्शन हेतु "इथनोल" को माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। औषधीय दृष्टि से सनाय के उपयोगी भाग इसके पत्ते तथा फलियां होते हैं। पत्ते तथा फलियों के कच्चे माल के रूप में उपयोग के साथ–साथ इनसे सेनोसाइड्स भी निकाले जाते हैं जिनका उपयोग चिकित्सकीय कार्यों के साथ–साथ विभिन्न खाद्य तथा कन्फैक्शनरी उत्पादों हेतु भी किया जाता है। इसे किसान को प्रतिवर्ष प्रति एकड़ लगभग 4720 रु. का लाभ प्राप्त हो सकता है।

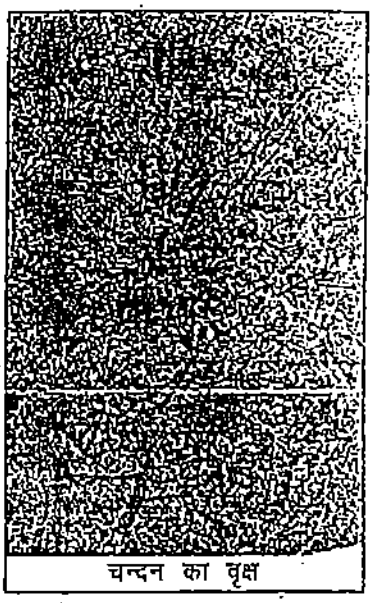
चन्दन का वृक्ष

1.1.19 ब्राम्ही (*Bacopa monnieri*) : ब्राम्ही एक विसर्पी अथवा रेंगने वाला मांसल (रसीली) पत्तियों एवं कांड वाला पौधा होता है। जिसकी जड़ें तथा पत्तियां इसकी गांठों (नोड्स) से निकलती हैं। इसकी गांठों से इतनी अधिक जड़ें तथा शाखाएं निकलती हैं कि उनसे भूमि पर एक चटाई जैसी बन जाती है। इस पौधे पर हल्के नीले/जामुनी–सफेद रंग के लगभग एक सें.मी. साइज़ के फूल निकलते हैं जो कि अंततः भूरे रंग के फलों (कैप्सूल्स) में परिवर्तित हो जाते हैं तथा जिनमें 0.2 से 0.3 एम.एम. साइज के अनेकों चपटे–लम्बगोल बीज तैयार होते हैं। वस्तुतः यह देखने में "नाइन ओ. क्लॉक फूल" जैसा दिखता है जिन्हें घरों में शोभा कार्य हेतु लगाया जाता है। ब्राह्मी एक ऐसी मेध्य औषधि' के रूप में प्रयुक्त की जाती रही है जो मानव में स्मरण शक्ति एवं बौद्धिक शक्ति बढ़ाने में उपयोगी है संधिवात के निवारण, खांसी, गठिया तथा सूजन के उपचार, कब्ज, अपच, बुखार, चिंता अथवा व्यग्रता के निवारण हेतु, मिर्गी के दौरों, पागलपन, मधुमेह, सर्पदंश, पेशाब में जलन तथा दिमागी कमजोरी के इलाज हेतु भी किया जाता है। एक एकड़ की खेती से 30 क्विंटल सूखी शाक निकलने तथा उसकी 2000 रु. प्रति कुन्तल की बिक्री होने से लगभग 37,000 रु. की प्राप्तियां होंगी। इनमें से यदि फसल से संबंधित विभिन्न कृषि कार्यों पर 23000 रु. का व्यय होना माना जाए तो इस फसल से एक वर्ष में लगभग 37000 रु. का शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

1.1.20 ईसबगोल (*Plantago ovata*) : ईसबगोल शब्द की उत्पत्ति दो फारसी शब्दों "अस्प" तथा "घोल" से हुई मानी जाती है जिनका अर्थ है "घोड़े के कान"। क्योंकि इसके बीज नाव के आकार के अथवा घोड़े के कान के आकार के होते हैं अतः संभवतया इसी वजह से इसका नाम "अस्प घोल" अथवा ईसबगोल पड़ा होगा। ईसबगोल

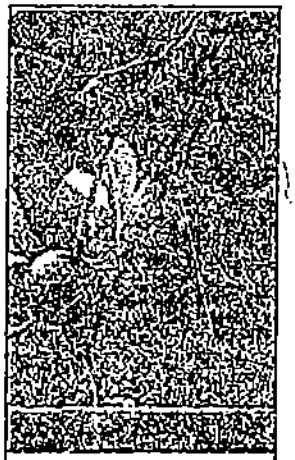
कोकुन के फल

अत्यधिक उपयोगी औषधीय पौधा है। कच्ची (क्रूड) अवस्था में प्रयुक्त करने के साथ–साथ इससे कई उच्च मूल्य उत्पाद (वेल्यू एडेड प्रोडक्ट) जैसे नेचरकेयर, सुबलिन, सिराटोन, मेटाम्यूसिल, लिगाफिन आदि भी बनाए जाते हैं जिनकी भारतवर्ष के साथ–साथ विदेशों में भी काफी अधिक मांग है। वस्तुतः भारत से निर्यात होने वाले औषधीय पौधों में यह प्रमुख स्थान रखता है तथा इसे विकासशील देशों के साथ–साथ विकसित देशों में भी काफी अधिक पसन्द किया जाता है।

ईसबगोल के बीजों में 30 प्रतिशत लसलसा पदार्थ अथवा पिच्छिल द्रव्य (*mucilage*) होता है जो पूरी भूसी में होता है। यह जाइलोज (*Xylose*) अरेबिनोज़ (*Arabinose*) तथा गैलैक्टुरोनिक अम्ल (*Galecturonic acid*) से बना होता है। इसके अतिरिक्त इनमें रैमनोज़ (*Rhamnose*) तथा गैलेक्टोज़ (*Galactose*) भी होते हैं। बीजों में लिसलिसे पदार्थ के अतिरिक्त एक स्थित तेल (5 प्रतिशत) फाइटॉस्टेरॉल तथा आकुबिन (*Aucubin*), टैनिन तथा एक अन्य तत्व भी होता है जो एसिटिलकोलिन के सदृश क्रिया करता है। ठंडे पानी से इसके बीजों से निकाले जाने वाले एक्स्ट्रैक्ट में पौलीसैकराइड्स निकाले जाते हैं जिनमें 20 प्रतिशत यूरोनिक एनहाईराइड, 52 प्रतिशत पेन्टोसन तथा 18 प्रतिशत मिथाईल पैन्टोसन पाया जाता है। इसके बीजों में 17 से 19 प्रतिशत प्रोटीन पाया जाता है जिसमें वेलाइन, ग्लाईसाइन, ग्लूटैमिक एसिड, सिस्टाइन, लाईसाइन ल्यूसाइन, टाइरोसाइन तथा सीराइन नामक अमीनों एसिड पाए जाते हैं। इसके बीजों में 14 से 23 प्रतिशत तक एक तेल पाया जाता है जिसमें लिनोलिक अम्ल की बहुलता होती है। ईसबगोल की भूसी में इतना अधिक म्यूसिलेज, होता है कि इसका एक भाग 20 गुना जल में थोड़े समय तक रखने से ही जैली के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

यद्यपि फसल से होने वाले उत्पादन की मात्रा कई कारकों पर निर्भर करती है परन्तु यदि सभी स्थितियां सामान्य हों तथा समस्त कृषि क्रियाएं समय पर एवं व्यवस्थित तरीके से की जाएं तो लगभग 4 क्विंटल प्रति एकड़

बीज का उत्पादन किसान को इस फसल से प्राप्त होता है। इस बीज की बिक्री दर यदि 2500 रु. प्रति क्विंटल मानी जाए तो इस चार माह की फसल से किसान को लगभग 11500 रु. प्रति एकड़ की प्राप्तियां (बीज एवं पशुचारे के रूप में) होती है जिसमें से लगभग 7700 रु. का शुद्ध लाभ प्राप्त होता है।

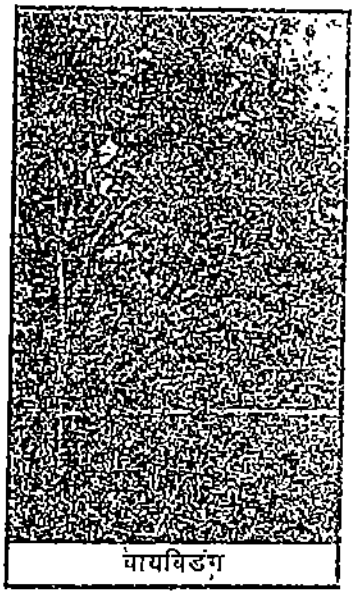
वायबिडंग

1.1.21 गिलोय (*Tinospora cordifolia*) : गिलोय सम्पूर्ण भारतवर्ष में 1000 फीट की ऊँचाई तक में पाई जाने वाली एक बहुपयोगी झाड़ीदार लता है। भारतवर्ष के साथ–साथ श्रीलंका तथा म्यांमार के जंगलों में प्राकृतिक रूप से पाई जाने वाली इस बहुवर्षीय लता का काण्ड काफी मांसल होता है जिसकी शाखाओं से अनेक पतले–पतले मूल निकलकर नीचे झूलते रहते हैं। इसकी लताओं पर पतली त्वचा (छिल्का) होता है जिसे हटाने पर नीचे हरा मांसल भाग दिखता है इसके पत्ते हृदयाकार तथा पान के पत्तों की तरह चिकने होते हैं इसकी लताओं पर मटर के दाने के समान फल लगते हैं जो पहले तो हरे रहते हैं परन्तु पकने पर लाल हो जाते हैं। यद्यपि वर्षा ऋतु में इस पर भरपूर पत्ते आ जाते हैं परन्तु सदियों में इसके अधिकांश पत्ते पीले पड़कर झड़ जाते हैं। औषधीय उपयोग हेतु मुख्यतया इसकी कांड अथवा बेल का उपयोग किया जाता है, हालांकि इसके पत्ते भी काफी अधिक औषधीय उपयोग की वस्तु हैं परन्तु अधिकांशतः इसकी बेल को ही सूखे रूप में प्रयुक्त किया जाता है। वैसे इसको हरी अवस्था में प्रयुक्त करना ज्यादा लाभकारी माना जाता है। इसी प्रकार यूं तो किसी भी प्रकार तैयार हुई गिलोय औषधीय उपयोग में लाई जाती है परन्तु नीम के पौधों पर चढ़ी हुई गिलोय की बेल का औषधीय महत्व दूसरों की अपेक्षा ज्यादा माना गया है। शीतकाल में गिलोय के पत्ते पीले होकर गिरने लगते हैं। फलतः जनवरी से मार्च माह के बीच में इसकी बेलों को नीचे एक फीट छोड़कर काटकर उनको छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर सुखा लिया जाता है। प्रायः एक एकड़ की खेती से लगभग 3–4

कुन्तल सूखी लताएं प्राप्त हो जाती हैं जिनका बिक्री भाव लगभग 12–15 रु. प्रति कि.ग्रा. तक रहता है।

1.1.22 मकोय (*Solanum nigrum*) : वर्षा ऋतु में स्वयंजात उगने वाले पौधे मकोय की मुख्यतया दो प्रजातियां पाई जाती हैं– काले फलों वाली तथा नारंगी फलों वाली। इसके फल टमाटर जैसे (साइज में काफी अधिक छोटे) होते हैं तथा खाने में ये कुछ खटमिठे होते हैं। कौओं को इसके फल अत्यधिक प्रिय होने के कारण ही इस पौधे का नाम "काकामाची" पड़ा है। औषधीय उपयोग में इसका पंचांग काम में लाया जाता है।

मकोय का उपयोग मुख्यतया पेट साफ करने तथा भूख बढ़ाने हेतु किया जाता है। ड्राप्सी नामक बीमारी में भी इसका पौधा उपयोगी पाया गया है तथा इसका काढ़ा प्रयुक्त करने से पेशाब की मात्रा भी बढ़ती है। बुखार में मकोय एक कूलिंग एजेन्ट का कार्य करता है। इसके साथ–साथ पाचन तंत्र से संबंधित विकारों जैसे पैप्टिक अल्सर्स, कोलायटस तथा गैस बनने आदि जैसे विकारों में भी इसका उपयोग किया जाता है। पेचिश अथवा मरोड़ में भी इसके पत्तों का काढ़ा उपयोगी पाया गया है। अस्थमा की स्थिति में ब्रोन्कियल ट्यूब में जमी बलगम निकालने हेतु मकोय के फल काफी प्रभावी पाए गए हैं। विभिन्न चर्मरोगों जैसे एग्ज़मा, एक्ने, लालचकत्तों, फोड़ें, त्वचा के जल जाने तथा रिंगवर्म से प्रभावित स्थान के ऊपर इसका रस लगाया जाता है। इसके काढ़े से शरीर के विभिन्न अंग धोने से सूजन तथा दर्द में राहत मिलती है। जोड़ों के दर्द, बवासीर के उपचार तथा मुंह के छालों के निदान में भी मकोय का रस प्रभावशाली पाया गया है। इनके अतिरिक्त इसके फलों का उपयोग केक तथा पेस्ट्री में ड्राईफ्रूट के रूप में भी किया जाता है तथा इनसे जेम भी बनाया जाता है। मकोय लगभग 6–7 माह की फसल है। अगस्त से अक्टूबर माह में मकोय के फल पकने लगते हैं जिन्हें चुन लिया जाता है। इन फलों को भी सुखाकर बेचा जा सकता है। फसल पूरी तरह पक जाने के उपरान्त नवम्बर–दिसम्बर माह में इसे पंचांग की प्राप्त हेतु उखाड़ कर अच्छी प्रकार सुखा लिया जाता है। एक एकड़ की फसल से लगभग 50 कि.ग्रा. सूखे फल तथा 10 क्विंटल सूखा पंचांग प्राप्त हो जाता है, जिनसे लगभग 82,00 रु. की प्राप्तियां होती हैं तथा लगभग 4000 रु.

प्रति एकड़ का शुद्ध लाभ प्राप्त होता है।

1.1.23 चन्दन (*Santalum album*) : चन्दन का वृक्ष एक मध्यम ऊँचाई (10 से 15 मीटर ऊंचा) वाला सदाबहार बहुवर्षीय वृक्ष होता है जो अपने जीवित रहने के लिए आंशिक रूप से दूसरे पौधों पर आश्रित रहता (आंशिक परजीवी) है। यह समुद्री सतह से 1800 मीटर से नीचे तक की ऊंचाई के क्षेत्रों में तथा 600 से 1600 मि.मी. वर्षा तक के क्षेत्रों में रह सकता है। चन्दन के पौधे पर 2–3 वर्ष की आयु से फूल आने प्रारंभ हो जाते हैं जो बैंगनी रंग लिए हुए भूरे होते हैं। पोधे पर मार्च- अप्रैल माह में फल आते हैं तथा तदुपरान्त इन पर 1 सें.मी. व्यास तक के फल आते हैं कई पौधों पर वर्ष में दो बार भी फूल तथा फल आते हैं। चन्दन के फल शीत ऋतु में पकते हैं तथा इनका रंग कालिका लिए हुए बैंगनी होता है। चन्दन के पौधों पर आने वाले पके हुए फलों में से एक–एक बज निकलता है। चन्दन की छाल गहरी भूरी होती है तथा यह असमतल होती है। इसके अंदर पाई जाने वाली "हर्टवुड" भूरे–पीले रंग की होती है तथा यह अत्यधिक खुश्बूदार होती हैं।

सात वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने के उपरान्त चन्दन के पौधों में "हर्टवुड" (जोकि चन्दन के पौधे का सर्वाधिक उपयोगी भाग है), बनना शुरू हो जाती है तथा 15 वर्ष की आयु के पौधों की हर्टवुड से तेल निकाला जा सकता है। यूं तो 20 वर्ष की आयु वाले पौधों की हर्टवुड से भी पर्याप्त मात्रा में तेल प्राप्त किया जा सकता है परन्तु पौधा जितना पुराना होगा उतनी ही उसमें हर्टवुड की मात्रा बढ़ेगी। इस दृष्टि से 40 से 50 साल की आयु के पौधों में सर्वाधिक तेल प्राप्त होता है। चन्दन की जड़ों से भी काफी मात्रा में तेल प्राप्त होता है। एक पूर्ण विकसित चन्दन के पौधे का घेरा अथवा व्यास 1 से 2.4 मीटर तक हो सकता है। भारत वर्ष में चन्दन प्राचीनकाल से ही व्यवसायिक उपयोग का वृक्ष रहा है जिसके उपयोग औषधीय से लेकर धार्मिक तक तथा हस्तशिल्प की कलाकृतियों से लेकर सौन्दर्य प्रसाधनों तक में है। चन्दन के पौधे से प्राप्त हर्टवुड बाजार में सफेद चन्दन के चिप्स के नाम से बिकता है। पूर्ण विकसित हो जाने पर चन्दन का एक पौधा लगभग 25000 रु. की आमदनी दे सकता है। इस प्रकार एक एकड़ में यदि 200 पौधे सफल हों तो इस फसल से 40 वर्ष की अविध में किसान को 50 लाख

रु. प्रति एकड़ तक प्राप्त हो सकते हैं।

1.1.24 कोकुम (*Garcinia indica*) : कोकुम भारतवर्ष के समुद्री तटीय क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप से पाया जाने वाला वह गहत्वपूर्ण वृक्ष है जो न केवल अत्यधिक औषधीय महत्व का पौधा है, बल्कि औद्योगिक उपयोगों तथा खाद्य पदार्थों में भी जिसकी उपयोगिता सर्वविदित है। अभी तक स्वयंजात उगने वाले इस पौधे की व्यवसायिक महत्ता को देखते हुए हाल ही में इसके कृषिकरण की ओर लोगों का ध्यान गया है तथा व्यवसायिक क्षेत्रों में यह माना जा रहा है कि इसका व्यापक कृषिकरण किसानों का भाग्य बदल सकता है। कोकुम का वृक्ष 4 से 10 मीटर तक ऊंचाई प्राप्त करने वाला एक बहुवर्षीय सदाबहार वृक्ष होता है जिसकी शाखाएं नीचे की ओर झुकी हुई होती हैं। इसकी लकड़ी धूसरवर्ण लिए सफेद होती है तथा इसकी छाल हल्की भूरी, पतली तथा समतल होती है। इसके पत्ते 5 से 10 सें.मी. लम्बे तथा 2 से 5 सें.मी. चौड़े, गहरे हरे रंग के होते हैं जोकि प्रारंभ में सकरे होते हैं तथा शाखाओं पर उल्टे लगते हैं। इसमें एक ही वृक्ष में स्त्रीपुष्प तथा पुंपुष्प अलग–अलग होते हैं जिनमें से स्त्रीपुष्प एकल और शीर्षस्थ होते हैं जबकि पुंपुष्प 4 से 8 अक्षीय अथवा गुच्छों में होते हैं। बीज से तैयार किए गए पौधे 8 से 10 साल में भरपूर फल देना प्रारंभ कर देते हैं। ये फल गोलाकार होते हैं जो प्रारंभ में हरे, बाद में बैंगनी तथा अंततः लाल हो जाते हैं। पके हुए फल स्वाद में खटमिट्ठे होते हैं। इसके फल की गिरी में 5 से 8 तक बीज आते हैं जबकि अप्रैल–मई माह से इसके फल पकने प्रारंभ हो जाते हैं। कोकुम का फल औषधीय गुणों से भरपूर होता है। यह हृदय के लिए शक्तिदायक होता है तथा आंतों में पाए जाने वाले कीड़ों को समाप्त करता है। इसका उपयोग बवासीर, पेचिश तथा ट्यूमर्स के उपचार हेतु किया जाता है। मछली के प्रिज़र्वेशन तथा रबर को जमाने (कागुलेशन) में भी इसका उपयोग किया जाता है। इसके छिलके का उपयोग "करी" में खटाई लाने हेतु इमली के स्थान पर किया जाता है। इसी प्रकार इससे कई अन्य उत्पाद जैसे कोकुम शर्बत आदि भी बनाए जाते हैं जो मोटापे को कम करते हैं तथा शरीर को स्फूर्ति प्रदान करते हैं। इसका शर्बत ठंडाई भी प्रदान करता है। कोकुम भूख भी बढ़ाता है तथा यह एक अच्छा लीवर टॉनिक भी है। कोकुम का फल

मोटापा तथा चर्बी घटाने में भी उपयोगी पाया जाता है।

लगाने के लगभग 7 वर्ष के उपरान्त पौधों पर फल आना प्रारंभ हो जाते हैं। औसतन एक पौधे पर 100 कि.ग्रा. से 150 कि.ग्रा. तक फल आते हैं जो मई माह से अगस्त माह के बीच पकते हैं। पकने पर इन्हें तोड़कर बिक्री हेतु प्रस्तुत कर दिया जाता है। एक एकड़ से प्रतिवर्ष औसतन 7 क्विंटल फल प्राप्त होते हैं। जिसकी बिक्री दर यदि 8000 रू. प्रति क्विंटल मानी जाए तो इस फसल से लगभग 55000 रू. प्रतिवर्ष की प्राप्तियां होती हैं जो कई वर्षों तक निरन्तर मिलती रहती हैं।

1.1.25 बायबिडंग (*Embelia ribes*) : सामान्य भाषा में बायबिडंग वायविडंग अथवा विडंग के नाम से जाना जाने वाला (गुल्म) पौधा, जिसे संस्कृत में "कृमिघ्न" अथवा "जंतुघ्न" के नाम से भी जाना जाता है, अपने नाम के अनुरूप कृमियों तथा कृमिरोगों के उपचार हेतु प्रयुक्त किया जाने वाला एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधा है। अपने कृमिनाशक, कीटनाशक तथा गर्भनिरोधक गुणों के कारण इस पौधे को कृषि में एक प्रभावी जैविक कीटनाशक तथा परिवार नियोजन में एक सस्ते एवं उपयोगी साधन के रूप में देखा जा रहा है जिससे यह पौधा भविष्य में एक अतिमहत्वपूर्ण तथा बहुपयोगी औषधीय पौधे के रूप में स्थापित होने जा रहा है। बायविडंग के बीजों का मुख्य घटक एम्बलियन होता है जो कि इसके बीजों में 2.5 से 3 प्रतिशत तक हो सकता है। इसके अतिरिक्त इसमें क्रिस्टेम्बिन नामक क्षाराभ, 5.2 प्रतिशत वसीय पदार्थ, 1 प्रतिशत क्वर्सिटाल बेन्जोक्विनिनोज़ तथा एम्बलिक एसिड भी पाया जाता है। औषधीय कार्यों हेतु मुख्यतया बायविडंग के बीज तथा जड़ें प्रयुक्त होते हैं। एक अनुमान के अनुसार यदि एक पौधे से प्रतिवर्ष औसतन 500 ग्राम बीज भी प्राप्त हों तो प्रति एकड़ लगभग 200 कि.ग्रा. बीज प्राप्त होंगे। इनका बिक्री दर यदि 50 रू. प्रति कि.ग्रा. माना जाए तो इस फसल से प्रारंभिक वर्षों में प्रतिवर्ष 10000 रू. की प्राप्तियां होंगी जोकि आगामी वर्षों में बढ़ती जाएंगी। ये प्राप्तियां काफी लम्बे समय तक (20–25 वर्ष तक) निरन्तर प्राप्त होती रहेंगी।

❖ ❖ ❖

इकाई– 1

लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. कलिहारी का वनस्पतिक नाम क्या है?
2. गुड़मार का उपयोग मुख्यतया किस बीमारी में किया जाता है?
3. पत्थरचूर का वनस्पतिक नाम क्या है?
4. मुलेठी का प्रमुख रासायनिक घटक कौन सा है?
5. डालर अर्नर किस पौधे को कहते हैं?

खाली स्थान भरो :

1. बायबिडंग के बीजों का मुख्य घटक.....होता है जो कि इसके बीजों में.....से.....प्रतिशत होता है।
2. मकोय लगभग.....माह की फसल है।
3. गिलोय के औषधीय उपयोग हेतु मुख्यतया इसकी..... का उपयोग होता है।
4. इसबगोल के बीजों में.....प्रतिशत लसलसा पदार्थ अथवा.....होता है।
5. ब्राह्मी एक.....पत्तियों एवं कांड वाला पौधा होता है।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न :

1. मध्य भारत में की जाने वाली 4 प्रमुख औषधिय फसलों की उपयोगिता के बारे में बतायें।
2. निम्नलिखित औषधीय पौधों में से किन्हीं चार पर टिप्पणी लिखिए–

   1. ब्राह्मी 2. कोलियस 3. गुड़मार
   4. तुलसी
   5. मुलेठी, 6. भुँई आमला 7. मिल्क थिस्टल

❖❖

इकाई –2

2.1 भारत में खेती के लिए उपयुक्त अन्य औषधीय पौधे

2.1.1 अशोक

2.1.2 जैट्रोफा

2.1.3 ग्वारपाठा

2.1.4 चन्द्रशूर

2.1.5 सदाबहार

2.1.6 पपीता

2.1.7 सुरांजन

2.1.8 धतूरा

2.1.9 तिलपुष्पी

2.1.10 जायफल

2.1.11 कवांच

2.1.12 कुचला

2.1.13 कालादाना

2.1.14 खुरासानी अजवायन

इकाई–2

2.1 भारत में खेती के लिए उपयुक्त अन्य औषधीय पौधे

2.1.1 अशोक (*Saraca Indica*) : अशोक का पौधा 25 से 30 फीट तक ऊंचा एक सदाहरित, आम के पौधे की तरह सरल एवं सुन्दर पौधा होता है जिसके पत्ते 3 से 9 इंच तक लंबे गहरे रंग के होते हैं। इसके पौधों पर बहुत सारी शाखाएं निकलती हैं जो चारों ओर फैलकर पौधों को गोलाकार एवं सुन्दर बनाती हैं। इसके पौधों पर चमकीले–सुनहरे रंग के रक्ताभ सुगन्धित पुष्प निकलते हैं जो सघन गुच्छों में रहते हैं। ये पुष्प प्रायः 3–4 इंच व्यास के होते हैं। तथा इनमें से लाल रंग के पुंकेशर बाहर निकले रहते हैं। प्रारंभ में ये पुष्प पीले–नारंगी रंग के होते हैं तथा सूर्य के प्रभाव से धीरे–धीरे हिंगुलवर्ण के हो जाते हैं। इसके पुष्पों की सुगंध से वातावरण सुरभित हो उठता है। ये फूल बसन्त ऋतु में आते हैं तथा शरद ऋतु में इन पर फलियां आती हैं। अशोक की छाल में ग्लाइकोसाइड्स, सैपोनिन्स, टैनिन्स, कैटेकॉल, हीमोटोक्सीलिन, किटोस्टीरॉल, एपिजैनिन, सायनीडीन, किम्फेरॉल, पेलारगोनीडीन, क्वेरसैटिन, कैल्शियम तथा लौह के यौगिक पाए जाते हैं।

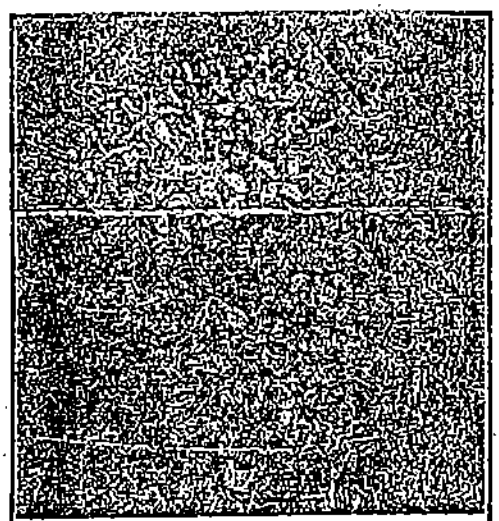

अशोक के पुष्प

इसके पावडर की छाल की भस्म में सिलिका सोडियम, पोटेशियम, फॉस्फेट, मैग्निशियम, कैल्शियम, एल्यूमीनियम, तथा स्ट्रोन्टिम आदि की मौजूदगी पाई गई है। यूं तो अशोक वृक्ष की छाल, पुष्प, फल तथा बीज–सभी की औषधीय महत्ता है, परन्तु अधिकांश औषधीय कार्यों हेतु इसका त्वक (छाल)

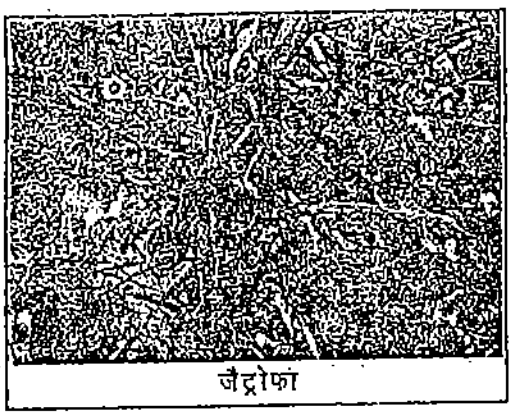

जैट्रोफा

ही प्रयुक्त की जाती है। एक अनुमान के अनुसार एक एकड़ में लगभग 10 क्विंटल छाल की प्राप्ति होगी जिसे यदि 10 रु. प्रति कि.ग्रा. की दर से बेचा जाए तो इससे लगभग 10000 रु. की प्राप्तियां होंगी।

2.1.2 जैट्रोफा अथवा रत्नजोत (*Jetropha curcas*) : जैट्रोफा अथवा रत्नजोत मध्यम आकार के उन प्रमुख पौधों (वृक्षों) से है जो वर्तमान में सर्वाधिक "लाइमलाइट" में हैं हालांकि यह विश्व के प्राचीनतम् पौधों में से एक है तथा पेरू में पाए गए इसके फासिल इसको 7 करोड़ वर्ष पुराना पौधा होना दर्शाते हैं परन्तु हाल ही के वर्षों में इसकी उपयोगिता डीज़ल के विकल्प के रूप में प्रचारित होने के कारण यह अनाथ किस्म का बेकार माना जाने वाला पौधा रातों रात कृषि वैज्ञानिकों, ट्रोसपोर्टरों, बंजर भूमि विकास के विशेषज्ञों, पर्यावरणविदों तथा बीज प्रदायकों का चहेता बन गया है। जैट्रोफा के पौधे लगभग सम्पूर्ण भारतवर्ष के गर्म तथा आर्द्र क्षेत्रों में देखे जा सकते हैं। अपने आप को सभी प्रकार के वातावरण में ढालने की क्षमता रखने, सभी प्रकार की मिट्टियों में पैदा होने तथा किसी प्रकार की सिंचाई के बिना अच्छी प्रकार फलने–फूलने वाला यह पौधा दक्षिणी अमेरिका तथा अफ्रीका का मूल पौधा माना जाता है जिसे पुर्तगाली व्यापारियों ने विश्व भर में फैलाया। वर्तमान में यह विश्व के लगभग सभी कटिबन्धीय तथा उष्ण कटिबन्धीय देशों में बहुतायत में पाया जाता है। जैट्रोफा के बीजों में "जैट्रोफिन" नामक एल्केलाइड पाया जाता है। जिसमें कैंसर रोधी गुण पाए जाते हैं। इसके तेल में विरेचक गुण पाए जाते हैं जिससे इसका उपयोग पेट साफ करने हेतु किया जाता है। इस संदर्भ में इसके तेल में अरण्डी के तेल की तुलना में कम विस्कॉसिटी होती है। विभिन्न चर्म रोगों तथा जोड़ों के दर्द की स्थिति में इसके तेल की बाहरी मालिश की जाती है। ड्रॉप्सी, साइटिका तथा पाक्षाघात के निवारण में भी इसकी उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है। ग्रामीण क्षेत्रों में पशुओं के घावों के उपचार हेतु इसके तेल का उपयोग किया जाता है जो कि इसकी नर्म मुलायम डालियों का उपयोग दातुन के रूप में दांत साफ करने हेतु किया जाता है। प्रायः दूसरे वर्ष में एक एकड़ से लगभग 100 कि.ग्रा. फल (100 ग्राम फल प्रति वृक्ष) प्राप्त होते हैं जो कि पांचवें वर्ष तक 500 किलोग्राम प्रति एकड़ तक हो जाते हैं। उत्पादन की यह मात्रा

आगामी वर्षों में अधिकतम 1000 कि.ग्रा. प्रति एकड़ तक हो सकती है। इस प्रकार द्वितीय वर्ष से यह फ़सल लगभग 1000 रू., दूसरे से पांचवें वर्ष तक 5000 रू., तथा पांचवें वर्ष के उपरान्त 10000 रू. प्रति एकड़ का उत्पादन दे सकती है।

ग्वारपाठा

2.1.3 ग्वारपाठा (*Aloe barbadensis*) : ग्वारपाठा एक से दो फुट ऊँचा एक छोटा पौधा (क्षुप) होता है। इसकी मांसल पत्तियां लगभग 12 इंच से 15 इंच तक लम्बीं, 4 इंच तक चौड़ी तथा लगभग पौन इंच (3/4इंच) मोटी होती हैं जो बीच से ऊपर की ओर पतली होती चली जाती है। ये पत्तियां पौधे के तने से जुड़ी रहती हैं तथा इने किनारों पर दंतुर कांटे होते हैं। पौधे के मध्य से एक पुष्पध्वज निकलता है जिस पर हल्के लाल रंग के फूल मंजरी में आते हैं। इस पुष्पध्वज पर शीतकाल के अंत में पुष्प तथा फल लगते हैं।

औषधीय उपयोग में मुख्यतया ग्वारपाठा के पत्तों का उपयोग किया जाता है। इन पत्तों को काटने पर उनके अंदर से पीले रंग का जैल अथवा रस निकलता है। यह जैल (रस) ही इस पौधे का उपयोगी तत्व होता है। यह रस, जोकि ठंडा होने पर जम जाता है, कुमारीसार, एलुआ, विब्र, एलोज़ अथवा मुसब्बर के नाम से जाना जाता है। अभी तक हमारे देश में मुसब्बर बनाने की परम्परागत विधियां ही प्रचलन मे हैं, जबकि विश्व के कई भागों में इसे बनाने हेतु स्वचालित इकाइयां स्थापित हो चुकी हैं। क्योंकि अभी तक उच्च गुणवत्ता का मुसब्बर बनाने की इकाइयां हमारे देश में नहीं हैं अतः अभी भी हमारे यहां यह (मुसब्बर) काफी मात्रा में आयात होता हैं तथा केवल स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु ही देशी पद्धति से बने हुए मुसब्बर की मांग रहती है।

विभिन्न औषधीय कार्यों हेतु ग्वारपाठा का उपयोग जितना परम्परागत चिकित्सा पद्धतियों तथा घरेलू उपचारों में किया जाता रहा है उतना ही आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों में भी हो रहा है। नीलगिरी के

कोटा आदिवासी लोग इसके गूदे का उपयोग जोड़ों के दर्द के इलाज हेतु करते आ रहे हैं। मध्यप्रदेश के गोंड आदिवासी समुदायों के लोग इसका उपयोग जख्मों के उपचार हेतु करते हैं। गांवों में छोटे बच्चों को मां का दूध पीने की जिद से हटाने के लिए अभी भी महिलाओं द्वारा इसके जूस का लेप अपने स्तनों पर किया जाता है (क्योंकि यह थोड़ा कड़वा होता है परन्तु नुकसान दायक नहीं)। यूनानी हकीमों द्वारा इसमें घी, शक्कर तथा दूध मिलाकर ग्वारपाठे का हलवा बनाया जाता है जिससे सामान्य दुर्बलता तो दूर होती ही है, यौनशक्ति भी बढ़ती है। बच्चों की आंतों के कीड़ों के उपचार हेतु भी इसका उपयोग किया जाता है। पेट की बीमारियों तथा अपच के उपचार हेतु भी इसे अजवायन के साथ मिलाकर प्रयुक्त किया जाता है। लीवर, स्पलीन, तंत्रिका तंत्र तथा महिला प्रजनानंगों में नवशक्ति के संचार हेतु भी इसका उपयोग प्रभावी पाया जाता है। ग्वारपाठा तथा इससे निकाले जाने वाले पदार्थ एलुआ में "एलोइन" नामक ग्लूकोसाइड्स का समूह पाया जाता है जिसके कारण इसकी रासायनिक क्रिया होती है। इस ग्लूकोसाइड की मात्रा ग्वारपाठा की विभिन्न जातियों में कम–ज्यादा होती है तथा इसकी सर्वाधिक मात्रा एलोवेरा अथवा कुराकाओ जाति में 22 प्रतिशत तक पाई जाती है। एलोइन के अतिरिक्त इसमें एलो–इमोदिन एलोयटिक एसिड, होमोनेटोलियन, एलोइजिन, इमोडि क्रयज़मिनिक एसिड, क्रासोफेनिक एसिड, एपोयस, ग्लैक्टुरोनिक एसिड, कैल्शियम आग्जेलेट, कोलिन, कोलिन सेलीसाईलेट, सैपोनिन्स, यूरोनिक एसिड, शर्करा, म्यूकोपोलीसैक्रीड्स 7–हाईड्रोक्सी क्रोमोन, कौनीफिरल एल्कोहल, ग्लाइकोसेमीनस हैग्जूरोनिक एसिड, एमाइलेस, एलीनेस आदि तत्व भी पाए जाते हैं। ग्वारपाठा के ज्यूस में कैल्शियम (4.7 प्रतिशत) सोडियम (1.43 प्रतिशत) पोटेशियम (6.6 प्रतिशत)., क्लोराइड (12.2 प्रतिशत) तक मैंगनीज़ (0.01 प्रतिशत) का होना पाया गया है। वैसे आज की स्थिति में ताजा पत्तों की बिक्री के

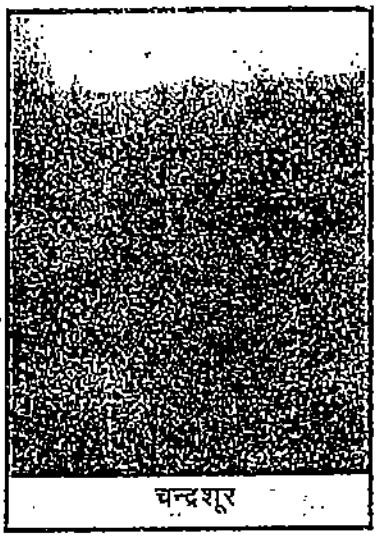

चन्द्रशूर

आधार पर प्रतिवर्ष 25000 से 35000 रु. तक की प्राप्तियां हो सकती हैं।

2.1.4 चन्द्रशूर (*Lepidium sativum*) : चन्द्रशूर लगभग एक फीट से ढाई फीट तक ऊंचा एक अल्पावधि (तीन–चार महीने की आयु) वाला पौधा होता है। कई क्षेत्रों में इसे एक खरपतवार के रूप में जाना जाता है क्योंकि यह रबी के मौसम में खेतों में अपने आप खरपतवार की तरह उग आता है। यह पौधा प्रारंभ में देखने में अलसी के पौधे जैसा ही दिखता है तथा प्रारंभ में यह हरा एवं पकने पर सफेद हो जाता है यूं तो इसकी पत्तियां भी सलाद के रूप में प्रयुक्त की जाती हैं परन्तु इसका प्रमुख उपयोगी भाग इसके बीज होते हैं जो बेलनाकार तथा लाल–भूरे रंग के होते हैं। इसके बीजों में पानी सोखने की काफी क्षमता होती है तथा पानी लगने पर अथवा गीले हो जाने पर ये लिसलिसे अथवा लुआबदार हो जाते हैं। ये स्वाद में तीक्ष्ण तथा हल्की कड़वाहट युक्त होते हैं। यूं तो इसके बीजों से तेल भी निकाल कर प्रयुक्त किया जाता है परन्तु अधिकांशतः इसके बीजों का ही खीर अथवा दूध के साथ सेवन किया जाता है। चन्द्रशूर के पंचांग में एक उड़नशील सुगंधीय तेल (क्रेस ऑयल) पाया जाता है जिसकी मात्रा इसके पंचांग में लगभग 0.155 प्रतिशत होती है। इस तेल में बेंजिल सायनायड तथा बेंजिल आइसोथायोसायनेट नामक घटक पाए जाते हैं। इसके बीजों में भी पीताभ–भूरे रंग का एक स्थिर तेल पाया जाता है जिसकी मात्रा बीजों में 25 प्रतिशत के लगभग होती है। इसके अतिरिक्त इनमें 23.5 प्रतिशत तक प्रोटीन, 15 से 16 प्रतिशत तक वसा, 5.7 प्रतिशत राख, 1.65 प्रतिशत फास्फोरस, 0.31 प्रतिशत कैल्शियम तथा 0.9 प्रतिशत गंधक पाया जाता है। इनके साथ–साथ इसमें ग्लूकोट्रोपलिन नामक ग्लूकोसाइड तथा सिनापिन, सिनापिक एसिड तथा यूरिक अम्ल आदि तत्व भी पाए जाते हैं। घरेलू चिकित्सा अथवा खाद्य पदार्थ के रूप में हमारे देश में चन्द्रशूर का उपयोग पुरातन समय से किया जाता रहा है। मुख्यतया इसका सेवन एक बलवर्धक पदार्थ के रूप में किया जाता है तथा इसके बारे में एक खास धारणा यह है कि यदि इसका सेवन खड़े–खड़े किया जाए तो व्यक्ति लम्बा हो जाता है (उसकी लम्बाई बढ़ जाती है)। चन्द्रशूर की एक औसतन फसल से प्रति एकड़ 4 से 5 क्विंटल बीजों का उत्पादन हो जाता है। इस फसल से लगभग 6000

से 7500 रु. प्रति एकड़ प्राप्तियां हो जाती हैं।

2.1.5 सदाबहार (कैथेरेन्थस रोजियस जी.डान (विन्का रोजियस) : "एपोसाइनेसी" कुल का पौधा है। इसे हिन्दी में सदाबहार, सदाफूल मराठी, नयन तोरा, तेलगु में विलार्गननरू तथा पंजाबी में रतन जोति कहते हैं।

1958 में अचानक इस पौधे की पत्तियों में एल्केलॉयड ढूंढ निकाले और इसमें सर्पगंधा वाले भी एल्केलॉयड मिले जो उच्च रक्तचाप को भी प्रभावित करते हैं। इस पौधे में समस्त संसार के पौधों से अधिक एल्केलॉयड प्राप्त हुए हैं। लगभग 65 एल्केलॉयड केवल पत्तियों से ही प्राप्त हुए हैं। ये आधुनिक इलाजों में विनब्लास्टिन प्रकार के एल्केलॉयड के कारण हुआ है। जो पौधों की नवीन पत्तियों से निकाला जाता है। इनकी पत्तियों में विनब्लास्टिन और विनक्रिस्टिन होता है, जिसका कैंसर रोधी औषधियों में उपयोग किया जाता है और जो क्रमशः एन्टीफिब्रिलिक और हाइपोटेन्सिव रसायन है यूरोप में इसकी जड़ों को औषधि के रूप में प्रयुक्त किया जाने लगा है। जड़ों से अज्मालीसीन एल्केलॉयड निकाला जाता है जिसका रक्त कोशिकाओं की कोमलता बढ़ाने के लिए उपयोग किया जाता है। विनक्रिस्टीन सल्फेट का उपयोग पुरानी ल्यूकेमिया, मुख्यतया बच्चों के ल्यूकेमिया के उपचार में इस्तेमाल किया जाता है। इनसे प्राप्त होने वाली औषधि बहुत महंगी पड़ती है, क्योंकि 10–15 टन पत्तियों से मात्र एक औंस के लगभग औषधि प्राप्त होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका के जी.ए. स्वेडा और उनके सहयोगियों ने इनके पौधे से एल्केलॉयड निकालने की तकनीक का विकास किया।

संयुक्त राज्य अमेरिका, सदाबहार का विश्व में सर्वाधिक उपयोग करने वाला देश है। यहां की एक मात्र फर्म ने विनप्लास्टिन और विनाक्रिस्टीन सल्फेट बनाने के लिए अपने को पेटेन्ट करवा दिया है, जो प्रतिवर्ष 1500 से 2000 टन पत्तियों का उपयोग करता है। यह फर्म इस मात्रा का अधिकांश भाग विदेशों से आयात करता है। यह आयात मुख्य रूप से मेडागास्कर से किया जाता है। शेष भाग भारत और मोजाम्बीक से मंगाया जाता है। हंगरी में भी इसकी पत्तियों की बड़ी मांग है। पश्चिमी, जर्मनी, इटली, इंग्लैण्ड

तथा नीदरलैण्ड सदाबहार की जड़ों का उपयोग करते हैं। ये देश इनकी जड़ों से सर्पेन्टाइन और दूसरे एल्केलॉयडों का निष्कर्षण करते हैं। ये देश प्रतिवर्ष लगभग 1050 टन जड़ों का उपयोग करते हैं।

यह मूत्र वर्धक, दस्त रोधी, घावों को भरने वाला तथा रक्त चाप को रोकता है। भारत और जमाइका में इसका उपयोग मधुमेह और कीटों के विष को हटाने/उपचार के लिये किया जा रहा है।

कैथेरेन्थस रोज़ियस बहुवर्षीय शाकीय पौधा है। यह तेजी से बढ़ता है। आमतौर से पौधों ऊँचाई एक मीटर तक होती है। जिससे अनेक शाखायें निकल कर 60–70 से.मी. के घेरे में फैल जाती हैं। इसके फूल सफेद या बैंगनी रंग के होते हैं। इनके फलीदार फलों में लगभग 20–30 बीज पाये जाते हैं। *वी. माइनर* या *वी. मेजर* दोनों *कैथेरेन्थस रोजियस* के पौधों से पूरी तरह भिन्न होते हैं।

निर्यात की संभावनाएं : निर्यात की मात्रा बढ़ाने के लिए सदाबहार की खेती पर बल देना होगा साथ ही वैज्ञानिक ढंग से पौधों में एल्केलॉयडों की मात्रा पर शोध करके इसके गुणों को बढ़ाने के उपाय करने होंगे। फसल की खुदाई के बाद सुखाई, भंडारण आदि पर अधिक ध्यान देना होगा।

बाज़ार भाव : सदाबहार सूखी हुई जड़ का भाव 15–25 रुपये प्रति किग्रा. तथा पत्ती का भाव 8–10 रु. प्रति किलो ग्राम था; वहीं इसके बीज का मूल्य 40–60 रु. प्रति किग्रा. है। एक किसान लगभग 50,000 रु. से 60,000 रु. प्रति हैक्टर कमा सकता है।

2.1.6 पपीता (कैरिका पपाया लिन) : कैरिका पपाया "कैरिकेसी" कुल का पौधा है। इसे हिन्दी में 'पपीता' बंगाली में 'पपीया' तमिल में 'पप्पायी' तेलुगू में 'तोप्पाई' मलयालम में 'पप्पयम' आदि कहते हैं। यह छोट मृदुकाष्ठ पौधा है। जो लगभग 2 से 4 मीटर तक ऊँचा होता है। शाखा रहित लम्बा तना और सिरे गहरे खंडों, डंठल वाले पत्तों के समूह से यह सुन्दर आकृति का पौधा दिखता है। पत्ते बड़े और लगभग 7 बड़ी पालियों में विभक्त होते हैं जो फिर अनेक पालियों में विभक्त हो जाते हैं।

फूल हल्के पीले, सुगन्धित और मांसल होते हैं। नर फूल लम्बी पतली लटकती हुई शाखों पर आस–पास सटकर गुच्छों में लगते हैं। पत्तों के

डंठलों के बीच से हल्के पीले या क्रीम रंग की कई दर्जन धारायें सी नीचे लटकती हुई दिखती हैं। कभी–कभी ये छोटे गुच्छों में निकलते हैं। मादा फूल कुछ बड़े समान्तर तने के पास ही निकलते हैं।

उपयोग : पपीता हमारे देश में काफी उपयोग में लाया जाने वाला एक ऐसा फल है, जिसके कितने ही उपयोग हैं। इस समय भारत में पपीते को मुख्य रूप से इसके फलों को खाने के लिये उगाया जा रहा है। भारत में अधिकांश लोग यह तो मानते हैं कि पपीता एक स्वादिष्ट, स्वास्थ्यवर्धक एवं पाचक फल है, परन्तु यह नहीं जानते हैं कि यह इतना पाचक क्यों है? पपीते के पाचक होने का सबसे महत्वपूर्ण कारण है उसमें पपेन नामक एन्जाइम का होना।

पपीते में विटामिन 'ए' प्रचुर मात्रा में (2050 आई.यू.) होता है। प्रति 100 ग्राम पपीते में लगभग 60 मि.ग्रा. विटामिन सी भी होता है। इसके अतिरिक्त इसमें 0.80 प्रतिशत प्रोटीन 0.01 प्रतिशत वसा एवं कुछ मात्रा में विटामिन 'बी' तथा कार्बोहाइड्रेट्स व खनिज लवण जैसे लोहा, फास्फोरस तथा कैल्शियम भी होते हैं।

भारत और ब्रिटेन की भेषज संहिताओं (फार्माकोपिया) में पपीता मान्यता प्राप्त औषधि है। इनके कच्चे फलों से 'पपेन' प्राप्त किया जाता है। इसका उपयोग पाचक दवाओं में किया जाता है। पपेन का महत्व दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने तथा औद्योगिक भी है। दवाओं के अतिरिक्त पपेन सिल्क, ऊन, चमड़ा तथा चुइंगम, पनीर, चाकलेट, बेकरी तथा बियर आदि उद्योगों में काम आता है। यह काफी महंगा बिकता है। इसको देश में तैयार करके विदेशों से काफी विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है। पपेन के लिये कच्चे फलों से दूध निकाला जाता है। इसके बाद भी फलों का उपयोग हो जाता है। इसके बीजों में प्रोटीन तथा वसीय तत्व पाया जाता है। जिसमें कीटनाशक गुण भी होते हैं पत्तियों में 'कारपेन' नामक एल्केलॉयड होता है जिसमें ऐस्कोर्बिक अम्ल पाया जाता है। कच्चे फलों के अतिरिक्त पके फलों से जैम और कैंडी बनायी जाती है।

भारत में पपीते पर आधारित उद्योग मुख्यतः दक्षिणी राज्यों जैसे तमिलनाडु, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश और महाराष्ट्र तक ही सीमित हैं। इन

राज्यों में पपीते की खेती पके फलों के अतिरिक्त पपेन प्राप्त करने के लिये भी की जा रही है। इसके अलावा जे.एस. इण्डस्ट्रीज प्रतापपुरा, ओरछा जिला टीकमगढ़ (म.प्र.) के प्रयासों से सम्पूर्ण मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश के कुछ स्थानों पर पपीते की खेती बड़े पैमाने पर करवाई जा रही है तथा पपेन उद्योग लगाने के लिए भी उद्यमियों को प्रेरित किया जा रहा है।

उपज : जब पपीते के पौधे छोटे–छोटे होते हैं तो फलों की तुड़ाई भी आसानी से की जाती है, परन्तु जब पौधे इतने बड़े हो जाएं कि जमीन से फलों तक आसानी से न पहुंचा जा सके तब तुड़ाई में अन्य साधनों की मदद लेनी पड़ती है। इस कार्य में उठे हुए प्लेटफार्म आदि उपकरणों की आवश्यकता होती है।

पपीते की उपज उसकी किस्म, पौधे की आयु, भूमि की उर्वरता, सिंचाई पर निर्भर होती है। प्राय: व्यापारिक दृष्टि से पौधे लगाने के 10–12 माह बाद फल मिलने लगते हैं और ढाई–तीन साल तक लगातार फल देते हैं। तीन वर्ष बाद फलों की पैदावार कम हो जाती है। पौधों से अधिक उपज नए पौधों से मिलती है। औसतन एक पपीते के पौधे लगभग 25 से लेकर 150 फल तक मिलते हैं अच्छी प्रकार देखभाल करने से प्रतिवर्ष लगभग 27000, 35000 किग्रा. या तीन फसलों में 1,00000 से 1,25,000 किग्रा. प्रति हेक्टेयर तक उपज मिलती है।

2.1.7 सुरांजन (कोल्चिकम ल्यूटिकम, वेकर) : यह 'लिलिएसी' कुल का पौधा है। भारतीय भाषाओं में इसके अनेक नाम हैं। संस्कृत में इसे हिरन तूलिया, हिन्दी में सुरंजन, सूनिरंजन और पंजाबी में सूरिंजन और अंग्रेजी में गोल्डन कोलिरियन कहते हैं।

उपयोग : इसके कंदों में 'कोल्चिसिन' नामक एल्केलॉयड पाया जाता है। यह अफगानिस्तान और उत्तरी भारत में एक महत्वपूर्ण औषधि है। इसके कंद रेचक तथा स्वेद जनक, पाचक, परिवर्तनकारी की तरह उपयोग किए जाते हैं। गठिया तथा, जोड़ों के दर्द, जिगर तथा तिल्ली के रोगों में इसे प्रयुक्त किया जाता है। सूजन तथा पीड़ा में इसकी मालिश की जाती है। ये पौधों में गुणसूत्र संख्या को बदलने में भी प्रयोग किया जाता है।

उत्पादन : प्रतिवर्ष प्रति हैक्टर 50–100 क्विंटल घनकन्द प्राप्त होते हैं।

होने वाले वाष्पशील तेल का उपयोग बहुतायत से औषधियों में प्रायः किया जाता है। इससे स्पीरिटन, एम्पोनिएरेमेटिक्स तथा फिकब्यूरा, पेलेरियानो, एम्पेनिवेटा आदि औषधीय रसायनों को तैयार किया जाता है। उल्टी तथा जी मचलाने आदि में भी इस तेल का उपयोग और रेचक उद्दीपक औषधियों में किया जाता है। इसका उपयोग मसाले के रूप में किया जाता है। इसे पीस कर मुरब्बा, विलायती फिरनी (कस्टर्ड) और विलायती पकवान में भी उपयोग किया जाता है। पके हुए फलों का ताजा छिलका मुरब्बा (जैली) बनाने के-काम आता है। साबुन उद्योग में जायफल का मक्खन काम आता है। जायफल के पत्ते के सत् से तेल तैयार किया जाता है। जिसमें खरपतवारों को नष्ट करने की शक्ति पायी गयी है। जायफल का उपयोग दंतमंजनों, मिठाइयों आदि को सुगंधित बनाने में किया जाता है। छिलके का सतरंग पक्का करने के लिए उत्तम है।

आठ से दस वर्ष की आयु में वृक्षों में फल लगने लगते हैं। फूल आने शुरू हो जाने के पश्चात् फलों को पकने में लगभग 6 माह लग जाते हैं। नीलगिरि में फसल लगाने का मौसम जून से अक्टूबर तक है। वहां एक बड़े मादा वृक्ष से औसतन 10 किग्रा. जायफल और आधा किलो जावित्री प्राप्त होती है। 1997–98 में लगभग 30 टन जायफल निर्यात विदेशों को किया गया जिसका मूल्य लगभग 4 लाख रुपये था। फुटकर में एक जायफल का फल कम से कम एक रुपये का बिकता है।

2.1.10 कवाच (*मुकूना प्रूरीटा वेक*) *'लेग्यूमिनोसी'* कुल के अन्तर्गत आता है। इसे हिन्दी में कवाच, संस्कृत में आत्म गुप्त, पंजाबी में केवाच, बंगाली में अलकूसा, तमिल में पूनाय काली, तेलगू में डूलागान्डी, मलयालम में सारियानम, महाराष्ट्र में कूहाली कहते हैं। यह संसार में उष्ण कटिबंधीय व उपकटिबंधीय देशों में पाया जाता है। भारत में लगभग इसकी 14 जातियां (स्पीशीज) जंगली पाई जाती हैं। ये हिमालय के निचले भागों में पश्चिम से लेकर बंगाल तक फैला हुआ है। यह बंगाल, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, केरल आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश और अंडमान निकोबार द्वीपों के जंगलों में भी मिलता है। इन 14 किस्मों में से कवाच 'मुकूना प्रूरीटा वेक' ही दवाइयों में उपयोगी सिद्ध हुआ है। इस पौधे के बीजों और जड़ों का औषधि के रूप में

उपयोग होता है। इस पौधे से 'एलडोपा' का निष्कर्षण किया जाता है। जो प्रोस्टेट ग्रन्थि (नर ग्रन्थि) की क्रियाओं के लिए अत्यधिक लाभकारी हैं। यह नसों के लिए बलकारक औषधि है और पुरुषत्व के लिए भी उपयोगी है। ये 'पार्किंसन' अर्थात् हाथ–पैर हिलने वाली बीमारी में औषधि के रूप में दी जाती है। इसके सेवन से रक्त चाप भी ठीक होता है। इसके बीजों में एल्केलायड, अमिनोएसिड आदि भी हैं जो उपयोगी हैं। इसके बीज, स्वादजनक, पोष्टिक तथा सर्पदश में उपयोगी बताये जाते हैं। फलियां कीटनाशी होती हैं। जड़ें रेचक होती हैं। यह ज्वर, जलंधर तथा हैजा में भी लाभकारी होती है।

सामान्य दशा में प्रति हेक्टेयर भूमि से लगभग 3–4 क्विंटल बीज प्राप्त होता है। यह भूमि की उर्वरक क्षमता पर निर्भर करता है। यदि फसल को भूमि पर ही फैलने दिया गया है तो उपज लगभग 1500–1700 किलो प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है, परन्तु अच्छी तरह सिंचाई और पौधों को सहारा देने पर 5 क्विंटल बीज भी प्राप्त हो सकता है।

2.1.11 कुचला (*स्ट्रिकनास नक्सवोमिका*) : 'लोगेनियेसी' कुल का पौधा है, इसे हिन्दी में कुचला, बंगाली में कुचिला, मराठी में कमरा, तमिल में पेट्टी येट्टाई कहते हैं। कुचला का वृक्ष भारत में मालाबार तथा कोरोमण्डल तटों पर अधिकता से पाया जाता है। इस वृक्ष का लगभग प्रत्येक भाग स्वाद में कड़वा तथा विषयुक्त होता है। वृक्ष की ऊँचाई कभी–कभी 300 मीटर तक पहुंच जाती हैं। पत्तियां 8 से 15 सेमी. तक लम्बी होती हैं जिनमें 3 से 5 उभरी हुई शिरायें होती हैं। फूल हल्के रंग के होते हैं तथा फल एक छोटे से सेब के आकार के होते हैं। पके फलों का रंग हल्का गहरा नारंगी होता है। फल 4–5 चपटे लगभग गोल विषैले होते हैं। पके हुए फलों को एकत्रित करके गूदा बाहर निकाल दिया जाता है अथवा फलों को सड़ने दिया जाता है। बीजों को बाहर निकाल कर धूप में सुखा दिया जाता है। यद्यपि फल के गूदे में भी थोड़ा बहुत विषैलापन होता है किन्तु कुछ अन्य पशु–पक्षी उसे खाकर अपना पेट भरते हैं।

हमारे देश में कुचले का उपयोग बहुत पुराना नहीं है प्राचीन ग्रन्थों में इसका प्रसंग नहीं मिलता है। यूरोप में सोलहवीं शताब्दी में ही कुचले का

प्रयोग आरम्भ हो गया था। स्ट्रिकनाइन प्राप्त करने के लिए पहले कुचले का सत तैयार किया जाता है। इस सत को पानी में घोलकर लैड एसीटेट मिलाया जाता है। लैड एसीटेट मिलाने से इन घोल में से अन्य अवांछनीय पदार्थ तलछट के रूप में प्रथक हो जाते हैं और स्ट्रिकनाइन घोल में रह जाती है।

स्ट्रिकनाइन एल्केलॉयड के औषधीय गुण अनियमित होते हैं। प्राचीन चिकित्सा में इसका उपयोग हृदयपेशियों और श्वसन अंगों को उद्दीप्त करने और शक्तिवर्धक औषधि के रूप में किया जाता था। यद्यपि स्ट्रिकनाइन केन्द्रीय तन्त्रिका संस्थान को उद्दीप्त करता है फिर भी अधिक मात्रा में इसका उपयोग किया जाता है। इसको ब्रिटिश फार्माकोपिया में 1973 में शामिल किया गया है। यह चूर्ण द्रव्य तथा टिंचर के रूप में दिया जाता है।

2.1.12 कालादाना (*आइपोमिया हेडेरिया लिन*) : 'कनवाल्वुलेसी' कुल का पौधा है। इसे हिन्दी में कालादाना, मिर्चई, संस्कृत में कृष्णबीज, श्यामबीज, बंगाली, गुजराती में कालादाना, काल्लाकुम्पन, तेलगू में जिरिका, कोल्ली, तमिल में क्वकहन, सिरिक्की, कन्नड़ में गनरीबीज, उड़िया में खानी खोड़ो, कश्मीर में हुकउल पोल, पंजाबी में विलड़ी इस्पेवाकेर, किरमांवा, कपरूसाग कहते हैं। यह बाजार में कालादाना के नाम से बिकता है और विरेचक की भांति इस्तेमाल किया जाता है।

आइपोमिया एक वर्षीय अथवा बहुवर्षीय शाकीय वल्लरी है। यह भारत में हिमालय क्षेत्र में 1800 मीटर ऊँचाई वाले क्षेत्रों में उपलब्ध है। इसको सजावटी पौधे के रूप में बगीचों आदि में भी उगाया जाता है। क्योंकि इसके फूल अत्यन्त लुभावने होते हैं। पौधे की पत्तियां सकान्तर तीन पत्तियों वाली होती हैं। फूल हल्के पीले, चटक नीले या गुलाबी झलक वाले चित्ताकर्षक होते हैं। प्रौढ़ फूल 1—5 फूलों वाले छत्र की सीमाओं पर पाये जाते हैं। इसकी संपुटिकायें अंडाभ, चिकनी और गोलाकार होती हैं। बीज 4 या 6 काले भूरे रंग के रोयेंदार होते हैं।

कालादाना सक्रिय विरेचक और भारतीय फ़ार्माकोपियों में मान्य है। यह जैलप एकसोगोनियम पर्गा बेंथम के स्थान पर उपयोग किया जाता है। इसकी विरेचक क्रिया एक रेजिन के कारण है, जो बीजों में एल्कोहल द्वारा

अन्य निष्क्रिय रेजिन पदार्थ, निष्कर्षित किया जा सकता है। बीजों और सम्पूर्ण रेजिन निष्कर्ष क्रमशः 30–40 ग्रेन और 4–8 ग्रेन की मात्राओं में विरेचक के तौर पर उपयोग किये जाते हैं। यदि मात्रा अधिक हो जाती है तो इसमें विष के समान लक्षण प्रकट होते हैं। कालेदाने चिकित्सा में उपयोग किये जाते हैं। इसके निष्कर्ष से एक टिंचर और एक मिश्रित चूर्ण कालादाना कम्पोजिट्स बनता है। बीजों, पोटैशियम हायड्रोजन टाटरेट और सोंढ का चूर्ण होता है।

2.1.13 खुरासानी अजवायन (*हायोसाइमस म्यूटीकस*) : हेनबेन एक सार्वजनिक नाम है। हेनबेन–हायोसाइमस म्यूटीकस लिन और हा. नाइजर लिन के पौधों को दिया गया है। ये पौधे सोलेनेसी कुल के अन्तर्गत आने वाले जीनस हायोसायमस के पौधे हैं। इनकी सूखी पत्तियों और फूलों को हेनबेन कहते हैं। हेनबेन का उपयोग मादक पदार्थ, वेदनहारी, शांति प्रदायक, संक्रमण प्रतिरोध माइड्रियाटिक आदि में किया जाता है। इसके साथ ही हेनबेन का उपयोग दमा, स्नायु रोगों की गड़बड़ियों और कफ आदि में किया जाता है। हायोसाइमस की दो प्रमुख प्रजातियां हैं। *हायोसाइमस नाइजर लिन*– काली खुरासानी अजवाइन (ब्लैक हेनबेन) तथा *हायोसाइमस म्यूटीकस* (इंजिशियन, हेनबेन) खुरासानी अजवाइन।

हायोसाइमस नाइजर– (काली खुसारानी अजवाइन) यूरोप, मध्य एशिया, भारत, इंडोनेशिया, दक्षिण इंग्लैण्ड, उत्तरी अफ्रीका की मूल निवासी है। भारत में यह उत्तर पश्चिम हिमालय के क्षेत्रों में 2450 मीटर ऊँचाई तक कश्मीर से लेकर गढ़वाल तक में पायी जाती है।

हायोसाइमस म्यूटीकस– इजिप्शियन हेनबेन अथवा खुरासानी अजवाइन मौलिक रूप से मिस्र, सुडान सीरिया, बलूचिस्तान, एशियामाइनर और अफ़ग़ानिस्तान में पैदा होती है। अब भारत और केलीफार्निया में भी सीमित क्षेत्रों में इसकी पैदा किया जाता है। यह मूलतः खुरासान से भारत में लाई गई थी तथा यहां पर भारतीय चिकित्सकों ने इसे अजवाइन के समान समझकर इसका नाम 'खुरासानी' या 'पारसीकपभावी' रख दिया। परन्तु इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए गुण–कर्म एवं वनस्पतिक दृष्टि से दोनों ही औषधियां सर्वथा भिन्न हैं। खुरासानी अजवाइन को अजवाइन का भेद नहीं

समझना चाहिए।

खुरासानी अजवाइन की पत्तियां और फूल युक्त डालियों में एल्केलॉयड होते हैं, जिन्हें विभिन्न बीमारियों के उपचार हेतु उपयोग में लाया जाता है। मिस्र के लोगों द्वारा अजवाइन को 4000 वर्ष पूर्व में दवाइयों के लिये उपयोग में लाया जाता रहा है। ब्रिटिश फार्माकोपिया के अनुसार इसकी औषधि में 0.05 प्रतिशत से कम एल्केलॉयड नहीं होना चाहिए। यह देखा गया है कि जंगली तौर से उगने वाले पौधों की अपेक्षा कृषि के माध्यम से उगाये गये पौधों में एल्केलॉयड की मात्रा प्रमुख एल्केलॉयड है। इसके साथ संयुक्त रूप से हायोसीन, एट्रोपीन पाए जाते हैं। पत्तियों के डंठल में, तनों और पत्रदल की अपेक्षा अधिक मात्रा में एल्केलॉयड पाया जाता है।

आधुनिक दवाओं में यह सीडेटिव एवं नॉरकोटिक के रूप में उन्माद, अनिद्रा और तंत्रिका की उदासीनता में प्रयुक्त हो रहा है। यह लम्बे समय से खांसी, ब्रोन्काइटिस एवं अस्थमा की प्रारम्भिक अवस्था में भी प्रयुक्त हो रहा है। इसके अतिरिक्त यह दस्तावर एवं कार्मिनेटिव के रूप में भी प्रयुक्त होता है। बाह्य दवा के रूप में यह न्यूरेलिया, रूमेटिज्म, ग्रंथियों के बढ़ने एवं अल्सर में प्रयोग किया जाता है। इसके बीजों का उपयोग दांत के दर्द में भी होता है। काली खुरासानी अजवाइन में एल्केलॉयड की मात्रा 0.05 से 0.20 प्रतिशत एवं एजिन्शियन तक होती है। खुरासानी अजवाइन में मुख्य एल्केलॉयड 'हायोसायमीन' होता है। जोकि कुल एल्केलॉयड का 90 प्रतिशत होता है।

यह पौधा सम्पूर्ण यूरो, पुर्तगाल, ग्रीस और उत्तरी फिनलैण्ड में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त यह पौधा कोकेशिया, ईरान, एशियामाइनर, उत्तरी अमेरिका और साइबेरिया में भी पाया जाता है। भारत में यह पौधा जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तर की कुमाऊँ पहाड़ियों पर पाया जाता है। यह पौधा जम्मू–कश्मीर की सभी घाटियों में जंगली रूप से उगता है। व्यापारिक उपयोग के लिए इन पौधों को कश्मीर की घाटियों के बन्दीपुर के बारामुला, अनंतनाग, शोपियान, गुलमर्ग के आसपास के भागों से एकत्र किया जाता है।

भारत में श्रीनगर और उत्तर प्रदेश की निचली घाटियों में खुरासानी

अजवाइन लम्बे समय से उगाई जा रही है। मध्य प्रदेश के मालवा के क्षेत्र में इन्दौर से लगे क्षेत्रों में इसे प्रसारित करने के सतत प्रयास जारी है, जबकि मन्दसौर एवं नीमच क्षेत्रों में इसकी खेती प्रारम्भ हो चुकी है।

हा. नाइजर और *हा. म्यूटीकस* के पौधे समशीतोष्ण कटिबन्ध और पहाड़ी क्षेत्रों में गर्मी की फसल के रूप में उपयोग किये जाते हैं, जबकि उष्ण कटिबन्ध में ये पौधे शीतऋतु की फसल के रूप में उगते हैं। खुरासानी अजवाइन एक विषैली औषधि है। औषधीय उपयोग के लिए इसके बीज प्रयुक्त होते है।

यद्यपि *हा. नाइजर* और *हा. म्यूटिकस* दोनों की खेती करके लाभ प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु हा. म्यूटिकस से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि इस पौधे में एल्केलॉयडों की मात्रा अधिक होती है।

❖❖❖

इकाई– 2

लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. चन्द्रशूर का वनस्पतिक नाम क्या है?
2. सदाबहार किस कुल का पौधा है?
3. सुरांजन में कौन सा एल्केलॉयड पाया जाता है?
4. पपीता में पाया जाने वाला मुख्य एन्जाइम कौन सा है?
5. बैलाडोना का कौन सा भाग उपयोग किया जाता है?

खाली स्थान भरो :

1. चन्द्रशूर के पंचांग में एक.....पाया जाता है।
2. सदाबहार.....कुल का पौधा है।
3. सुरांजन के कंदों में.....नामक एल्केलॉयड पाया जाता है।
4. तिलपुष्पी का मुख्यतः .....सम्बन्धी रोगों पर पड़ने वाले प्रभाव के कारण इस्तेमाल किया जाता है।
5. खुरासानी अजवायन का.....एक सार्वजनिक नाम है।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न :

निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखें–

1. अशोक
2. चन्द्रशूर
3. खुरासानी अजवायन
4. सदाबहार
5. पपीता
6. सुरांजन
7. तिलपुष्पी
8. जायफल
9. कवाच
10. कुचला

❖❖

इकाई – 3

3.1 पहाड़ी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त औषधीय पौधे

3.1.1 कुटकी

3.1.2 दारूहल्दी

3.1.3 जटामांसी

3.1.4 कूठ

3.1.5 वत्सनाभ

3.1.6 कुंकुम (केसर)

3.1.7 अतिविषा

3.1.8 चिरायता

3.2 पहाड़ी क्षेत्रों में पाये जाने वाले कुछ दुर्लभ पौधे

3.2.1 एंजेलिका ग्लौका

3.2.2 आरनेबिया बैन्थामाई

3.2.3 हिडिक्यम स्पिेकटम

3.2.4 हिरेक्लियम केन्डीकंस

3.2.5 ससुरिया ओबवेलेटा

3.2.6 सेलिनम टेन्युफोलियम

3.2.7 बेलाडोना

3.2.8 एट्रोपा बेलाडोना

3.2.9 कुनैन

इकाई– 3

3.1 पहाड़ी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त औषधीय पौधे

3.1.1 कुटकी *(Picrorhiza kurroa* Royle) : कुटकी एक बहुवर्षीय छोटा पौधा होता हैं जिसके भूमिजन्य काण्ड लम्बे पतले होते हैं। इसका भौमिक काण्ड अथवा राइज़ोम 15 से 25 सें.मी. लम्बा तथा छोटीउंगली के जितना मोटा होता है। औषधीय कार्यों में इसके राइज़ोम ही प्रयुक्त किए जाते हैं जो बाजार में 2 से 5 सेंमी. लम्बे तथा 0.5 से 1 सेंमी. व्यास के बेलनाकार सिकुड़नयुक्त टुंकड़ों के रूप में मिलते हैं। ये अंदर से काले होते हैं तथा इका स्वाद अत्यंत कड़वा होता है। इसके पौधों पर जून–जुलाई माह में फूल तथा अगस्त–सितम्बर माह में फल आते हैं इसके मुख्यतया दो भेद होते हैं– चौड़ी पत्ती वाली कुटकी जो खुले क्षेत्रों तथा झरनों के आस–पास पाई जाती है तथा तंग पत्ती वाली कुटकी जो बड़े पौधों के नीचे पनपती है। कुटकी के राइजोम में दो तिक्त ग्लुकोसाइड पिक्रोराइजिन तथा कुटकीन पाए जाते हैं। इनके साथ साथ इसमें डी–मैनिटाल, वैनिक अम्ल, कुटकिओल तथा कुटकी स्टिरोल भी पाए जाते है। इसके राइजोम में एपोसाइनिन, एल्कानोल, कुर्टिन, कुकोसाइड एल्केन तथा बीटा सिटोस्टीराल की मौजूदगी भी पाई जाती है। कुटकी काफी अधिक औषधीय उपयोग का पौधा है। परम्परागत चिकित्सा पद्धतियों में इसे "बंडरड्रग" माना गया है। मुख्यतया इसका उपयोग पीलिया के निवारण में, अपचन तथा पेट विकारों के निवार हेतु, कब्ज के निवारण हेतु, जलोधर के उपचार हेतु, लीवर संबंधी विकारों के उपचार हेतु, शरीर की सामान्य दुर्बलता के उपचार हेतु तथा चर्मरोगों के निदान हेतु किया जाता है। कुटकी एक अच्छी भूख बढ़ाने वाली पाचन कब्जकारों को दूर करने वाली,

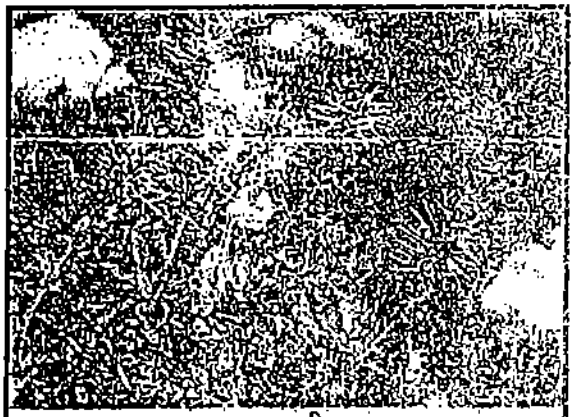

कुटकी

बुखार में राहत देने वाली तथा अस्थमा, अर्थराइट्स,, यूर्टीकरिया, लेप्रोसी आदि के निदान में उपयोगी पाई गई है। तीन वर्ष की कुटकी फसल से प्रति एकड़ लगभग 300 से 400 कि. ग्रा. तक सूखे राइजोम प्राप्त हो जाते हैं। एक एकड़ की खेती से लगभग 1 लाख रु. का शुद्ध लाभ प्राप्त हो सकता है।

दारूहल्दी

3.1.2. दारूहल्दी अथवा रसौत (*Berberis aristata*) : दारुहल्दी का झाड़ 6 से 18 फीट ऊँचा, 8 इंच मोटे तने वाला एक बहुवर्षीय कांटेदार झाड़ होता है। दारुहल्दी की लकड़ी पीले रंग की होती है तथा उबालने के उपरान्त भी इस लकड़ी में पीलापन बना रहता है। इसकी जड़ों तथा जड़ों की छाल में बर्बेरिन हाईड्रोक्लोराइड नामक एल्केलाइड पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें काराचीन नामक तत्व भी पाया जाता है। दारूहल्दी की कई प्रजातियां हैं जिनमें धर्बेरिस अरिस्टेटा, बर्बेरिस एशियाटिका, बर्बेरिस लेसियस तथा कोसिनियम फोनेस्ट्रेटम हैं। इनमें से आखिरी प्रजाति दक्षिणी भारत में पाई जाती है जिसे "पीतचन्दन" के नाम से जाना जाता है कृषिकरण हेतु दारूहल्दी की सर्वाधिक उपयुक्त प्रजाति बर्बेरिस आरिस्टेटा ही है। औषधीय दृष्टि से दारुहल्दी के उपयोगी भाग इसकी जड़ें तथा जड़ों के ऊपर की छाल होती है जिनसे "रसौत" नामक प्रेपरेशन बनाया जाता है। मुख्यतया इसका उपयोग बवासीर के उपयोग में, नेत्र रोगों के उपचार में, बालतोड़ तथा मुहांसों के उपचार में, विभिनन ज्वरों के उपचार में, मुंह के छालों के निदान हेतु, पेशाब की कठिनाई संबंधी रोगों के निदान हेतु, कैंसर के निदान हेतु तथा खून साफ करने में किया जाता है। दारुहल्दी की तीन वर्ष की फसल से लगभग 8 से 10 क्विंटल सूखी जड़ें तथा छाल प्राप्त होती है। वर्तमान में इन जड़ों का भाव 45 से 50 रु. प्रति कि.ग्रा. है। सारे खर्चे निकालकर इस तीन साल की फसल से लगभग 30000 रु. का शुद्ध लाभ कमाया जा सकता है।

3.1.3 जटामांसी (*Nardostachys jatamansi*) : जटामांसी लगभग 2 फीट की ऊंचाई वाला एक बहुवर्षीय पौधा होता है। जटामांसी के पौधे के नीचे लम्बी काष्ठीय राइजोम होती है जिसके साथ–साथ जड़ें लगी होती हैं। ये राइजोम शुष्क गहरे भूरे रेशों से ढंकी रहती हैं तथा ये राइजोम काफी खुशबूदार होते हैं। औषधीय उपयोग में इसके राइजोम ही प्रयुक्त किए जाते हैं। जटामांसी के राईजोम्स में पाए जाने वाले प्रमुख तत्व हैं– जटामेन्सोन, ल्यूपियॉल, जटामान्सिनोन, जटामान्सिनोल, एन्जिलिसिन, डाईहाड्रोज़, समान्सिन एल्कोहल, टर्पीन्स, ज़टामान्सिक अम्ल तथा एक्टीनीडीन जेसे ओरोसिलोल, ओरोसिलोन, एन्जिलिक एल्केलाइड्स आदि। जटामांसी उन 12 महत्वपूर्ण औषधीय पौधों में से एक है जिनका जिक्र यूरोपीय देशों में औषधीय पौधों पर हुए प्रारंभिक संकलन "फार्माकोपिया ऑफ हिपोक्रेट्स" में किया गया है। इसके उपयोग का इतिहास 3000 वर्ष पुराना माना जाता है तथा ऐसा माना जाता है कि प्राचीन मिश्र के लोग इसका उपयोग अपने सुगंधीय प्रसाधनों तथा अन्य प्रेपरेशन्स में किया करते थे। वर्तमान में लगभग सभी चिकित्सा पद्धतियों में इसका उपयोग हो रहा है। मुख्यतया जिन विकारों के उपचार हेतु इनका उपयोग किया जाता है वे हैं– तंत्रिका संबंधी विकार जैसे– हिस्टीरिया, मिर्गी आदि; आंतों के कीड़ों का निवारण, श्वास संबंधी बीमारियां, अनियमित मासिक धर्म, हृदय की अनियमित धड़कर, निम्न रक्तचाप का निवारण तथा बालों से संबंधित रोग। इनके अतिरिक्त यह

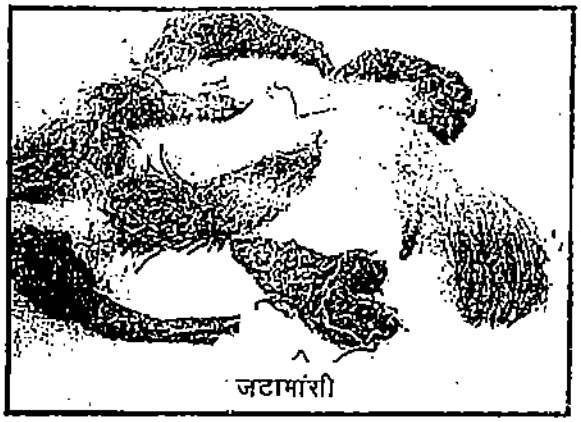
जटामांसी

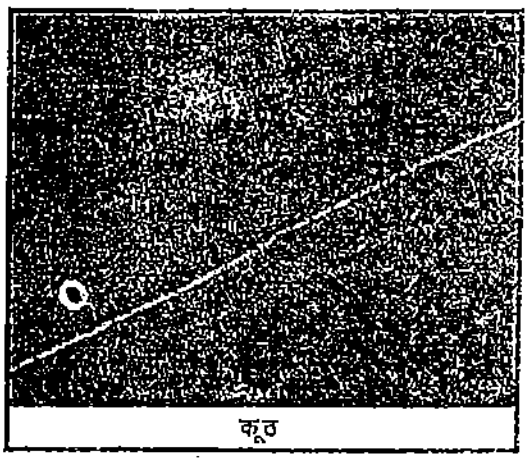
कूठ

हल्का प्रशांतक (ट्रैकुलाइज़र) भी है, गुर्दे से संबंधित विकारों को भी ठीक करता है, चेहरे की कांति भी बढ़ाता है, तथा बलवर्धक भी है। पूजा, अचर्ना तथा मंदिरों में प्रयुक्त होने वाले धूप में भी इसका उपयोग किया जाता है। एक एकड़ की खेती से लगभग 3 क्विंटल सूखी जड़ें प्राप्त हो जाती हैं जिनका बाजार भाव लगभग 150 रु. प्रति कि.ग्रा. रहता है। इसके साथ–साथ अगले सीजन में बिजाई हेतु दो एकड़ का प्लांटिंग मटेरियल भी प्राप्त हो जाता है। सारे खर्च निकालकर इस फसल से लगभग 50000 रु. प्रति एकड़ का शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

3.1.4 कूठ (*Saussurea costus*) : कूठ का पौधा लगभग 3 से 7 फीट ऊंचा एक बहुवर्षीय सघन एवं सुदृढ़ पौधा होता है। प्रतिवर्ष जोड़ों में इसके ऊपर का भाग तथा पत्तियां नष्ट हो जाती हैं तथा वसन्त ऋतु में नई पत्तियां आती हैं। इसके नीचे 6 इंच से 2.5 फीट तक लम्बी तथा 1 से 2 इंच व्यास की पतली गाजर के जैसी जड़ें होती हैं जिनका स्वाद कड़वा तथा चरपरा होता है तथा जिनके सूख जाने पर इनमें से तेज मधुर गंध आती है। औषधीय कार्यों हेतु इसकी जड़ें ही उपयोग में लाई जाती हैं। कूठ की जड़ों से एक तेल प्राप्त होता है जिससे उच्च कोटि का इत्र बनाया जाता है जो कीटाणुनाशक तथा जीवाणुनाशक होता है, इसका उपयोग गिरजाघरों, बौद्ध मन्दिरों तथा मस्जिदों में सुगंधित धूपन हेतु किया जाता है, इसका धुंआ मानव के केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र की क्रियाशीलता को कम करता है जिसकी वजह से इसका उपयोग नशा करने अथवा अफीम के स्थान पर किया जाता है, कूठ की जड़ें पुरानी खांसी तथा दमा के उपचार में लाभकारी होती हैं, इसका उपयोग जोड़ों के दर्द तथा संधिपात में किया जाता है, पुरानी चर्मरोगों तथा हैजे में यह उपयोगी है तथा यह एक शक्तिवर्धक, रक्तशोधक, शुक्रशोधक, पाचनवर्धक, वातनाशक, वाजीकारक तथा उत्तेजक का कार्य करता है। तीन वर्ष की कूठ की फसल से औसतन 8 क्विंटल सूखी जड़ें प्राप्त हो जाती हैं जिनका बिक्री मूल्य लगभग 45 रु. प्रति कि.ग्रा. रहता है। सारे खर्चे निकाल दिए जाने पर कूठ

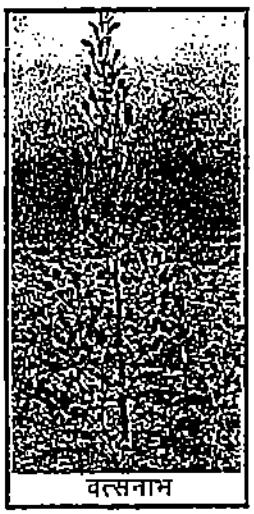
वत्सनाभ

की फसल से औसतन 30000 रु. तक का शुद्ध लाभ प्रति एकड़ कराया जा सकता है।

केसर

3.1.5 वत्सनाभ (*Aconitum Ferox*) : वत्सनाभ एक बहुवर्षीय मूलकन्द वाला पौधा होता है जिसका कांड एक से साढ़े तीन फीट तक ऊंचा होता है तथा इसका मूल "बछड़े की नाभि" जैसा द्वसंधीयुक्त होता है। संभवतया इसी वजह से इसे वत्सनाभ कहा जाता है। यह मूल लगभग 15 सेंमी. लंबा होता है तथा यह ऊपर से मोटा (लगभग 3.5 सें.मी.) व्यास वाला) तथा नीचे से पतला होता चला जाता है। यह मूल ऊपर से गहरे–भूरे बादामी रंग का तथा अंदर से सफेद रंग का होता है। पुराने मूल कन्द नए मूल कन्दों से ज्यादा गोटे होते हैं तथा इन पर छोटी–छोटी जड़ें लगी होती हैं। वत्सनाभ के पौधे का पुष्पन काल जुलाई–अगस्त, फलों का आगमन सितम्बर–अक्टूबर, बीजों का संग्रहण काल सितम्बर–अक्टूबर तथा मूल कन्दों का संग्रहण काल नवम्बर–दिसम्बर माह होते हैं। वत्सनाभ प्राचीनतम समय से ही औषधीय उपयोगों में लाया जाता रहा है। औषधीय उपयोगों में मुख्यतया इसकी जड़ें अथवा मूलकन्द प्रयुक्त किए जाते हैं। इसका उपयोग मुख्यतया शारीरिक कमजोरी दूर करने में, विभिन्न ज्वरों में, हृदय रोगों के निदान में, गठिया तथा संधिवात जैसे रोगों के उपचार में तथा पक्षाघात तथा नाड़ी दौर्बल्य के उपचार में किया जाता है। दांत के दर्द तथा शारीरिक दर्दों में इसका धुंआ सिगरेट की तरह लेने से लाभ होता है तथा इसके पत्तों को देशी शराब का फ्लेवर सुधारने हेतु प्रयुकत किया जाता है। परन्तु यहां ध्यान रखने वाली बात यह है कि वत्सनाभ मूलतः एक विष है अतः इसका उपयोग अत्यधिक सीमित मात्रा में तथा केवल वैद्य की सलाह से ही किया जाना चाहिए। वत्सनाभ की खेती से प्रति एकड़ लगभग 15 से 17 क्विंटल सूखे ट्यूबर्स तीसरे साल में प्राप्त हो जाते हैं। वर्तमान में सूखे ट्यूबर्स का भाव 100 से 150 रु. प्रति कि.ग्रा. है।

3.1.6 कुंकुम (केसर) (*Crocus sativus*) : एक औषधीय पौधे के

अतिविषा

रूप में केसर का उपयोग तिब्बी पद्धति में ज्यादा होता है। मुख्यतया इसका उपयोग पाचन संबंधी विकारों के निदान में; महिलाओं से संबंधी रोगों जैसे ल्यूकोरिया, हिस्टीरिया एवं अनियमित मासिक धर्म के निवारण में, चर्मविकारों के निवारण में, बच्चों के दस्त के उपचार में, कायाकल्प हेतु, मधुमेह के उपचार में तथा सिरदर्द एवं आधी सीसी के दर्द के उपचार हेतु किया जाता है। इसके साथ–साथ केसर मूत्रल भी है, बाजीकारक भी है, हृदय को शक्ति देने वाला भी है तथा कामोत्तेजक भी है। शरीर की कांति, सौम्यता एवं सुन्दरता बढ़ाने में भी यह काफी उपयोगी माना जाता है। भाव प्रकाश में केसर के तीन प्रकारों की चर्चा है– काश्मीरज (जो सबसे उत्तम माना जाता है तथा कश्मीर में पाया जाता है) बाल्हीकज (जो बल्कान में पाया जाता है), तथा फारसीक (जो फारस देश में उत्पन्न होता है)। केसर की फसल से होने वाली प्राप्तियां स्त्रीकेसर तथा घनकन्दों के रूप में होती हैं। घनकन्द आगे बिजाई हेतु प्रयुक्त किए जा सकते हैं। केसर की खेती से चौथे वर्ष से किसान को लगभग 1.4 लाख रु. का शुद्ध लाभ (केसर तथा घनकन्दों के रूप में) प्राप्त हो जाता है जो कि आगामी 6–7 वर्षों तक प्राप्त होता रहता है।

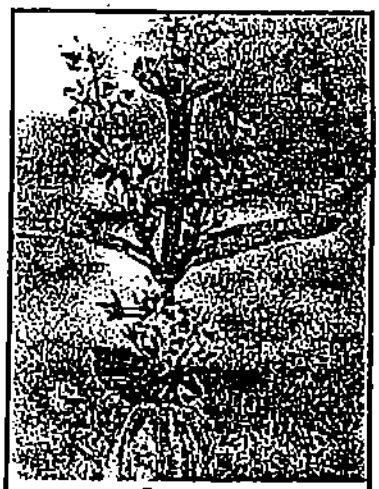
चिरायता

3.1.7 अतिविंषा (*Aconitun hetrophylum*) : भारतवर्ष में मुख्यतया सिक्किम से लेकर उत्तरी पश्चिमी हिमालयी क्षेत्रों में पाया जाने वाला अतिविषा अथवा अतीस का पौधा एक से तीन फीट ऊंचा एक द्विवर्षीय पौधा होता है। इस पौधे पर जुलाई अगस्त माह में पुष्प तथा अक्टूबर से दिसम्बर माह के बीच फल आते हैं।

औषधीय कार्यों हेतु मुख्यतया इसके कन्द उपयोग में लाए जाते हैं जो द्विवर्षीयु होते हैं। इनमें से एक कन्द पिछले वर्ष का होता है जिसे मातृकन्द कहते हैं जबकि एक नए वर्ष का होता है जिसे पुत्रीकन्द कहते हैं। ताजा कन्द लम्बगोल आकार का ऊपर से धूसरवर्ण तथा तोड़ने पर अंदर से श्वेत वर्ण होता है तथा इसके बीच में 4–5 काले बिन्दु होते हैं। इस कन्द की आकृति हाथी की सूंड़ की तरह ऊपर से मोटी तथा नीचे से पतली होती है। वैसे तो अतीस के कई भेद बताए जातें हैं परन्तु औषधीय कृषि में श्वेत अथवा कड़वी अतीस को ही उत्तम माना जाता है। अतीस काफी अधिक औषधीय महत्व का पौधा है जिसका उपयोग मुख्यतया बाल रोगों में, उन्माद के नियंत्रण में, बुखार के निदान में, ज्वरातिसार के निदान में तथा जहरीले कीड़े के काटने के उपचार हेतु किया जाता है। बच्चों की खांसी, ज्वर तथा वमन की स्थिति में अतीस का चूर्ण नागरमोथा तथा काकड़ासिंगी के साथ मिलाकर मधु के साथ बच्चों को चटाने से इन रोगों का निदान होता है, अतीस तथा बायबिडंग का समान भाग चूर्ण शहद के साथ लेने से बच्चों के पेट के कृमि नष्ट हो जाते हैं, बच्चों द्वारा रात को सोते समय बिस्तर पर पेशाब कर देने संबंधी समस्या (शय्यामूत्र) की स्थिति में अतिविषा तथा बाईबिडंग के 2–2 ग्राम चूर्ण की मात्रा दिन में तीन बार देने से बच्चों की शय्यामूत्र की समस्या का निवाराण होता है। बच्चों के रोगों में उपचार हेतु अतीस पर आधारित चूर्ण बालचातुर्भद्र चूर्ण तो जगप्रसिद्ध है ही। तीन वर्ष की अतीस की फसल से लगभग 5 क्विंटल सूखे कंद प्राप्त होते हैं जिनका बिक्री भाव 1000 रु. से 1500 रु. प्रति कि.ग्रा. तक होता है। फसल पर होने वाले विभिन्न खर्चों को कम कर देने के उपरान्त इस तीन वर्ष की फसल से प्रति एकड़ लगभग 4 लाख रु. का शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

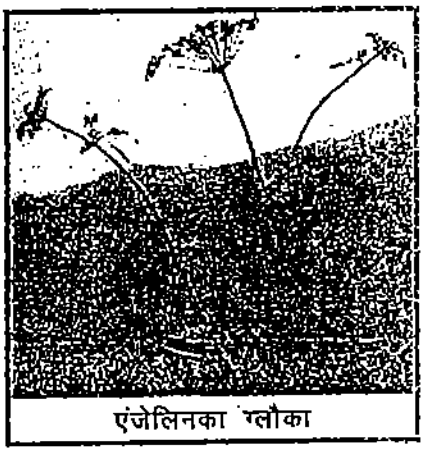
एंजेलिनका ग्लौका

3.1.8 चिरायता (*Swertia chirata*) : चिरायता, जिसे स्वर्शिया चिरायता भी कहा जाता है, लगभग 2 से 4 फीट ऊंचा एक वर्षी पौधा होता

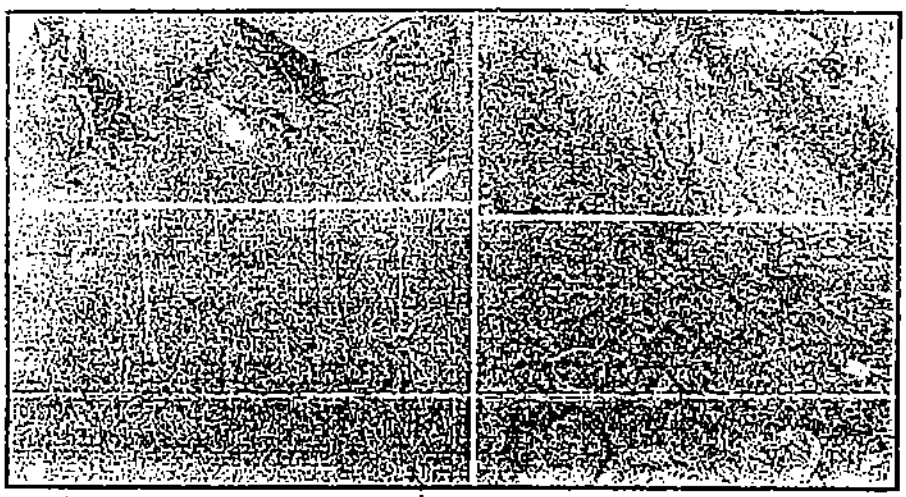

है। चिरायता का पौधा सीधा बढ़ने वाला पौधा होता है इसका तना नीचे गोलाकार तथा ऊपर चर्तुकोणीय होता चला जाता है। इसके पत्ते 5 से 8 सें. मी. लम्बे तथा 1 से 1.5 सें.मी. चौड़े भालाकार होते हैं। जुलाई से अक्टूबर माह के बीच इस पर हल्के पीले हर बैंगनी रंग लिए हुए फूल आते हैं यूं तो इसकी जड़ जो 5 से 10 सें.मी. लंबी तथा 12 एम.एम. तक मोटी होती है, इसका सर्वाधिक उपयोगी भाग होती है परन्तु औषधीय कार्यों हेतु इसका सम्पूर्ण पंचांग काम में लाया जाता है। चिरायता काफी अधिक औषधीय उपयोग वाला पौधा मुख्यंतया इसका उपयोग सामान्य तंदुरुस्ती प्राप्त करने, भूख बढ़ाने तथा विरेचन हेतु किया जाता है। इससे मानव के सामान्य तंत्र में सुधार आता है तथा उसमें पोषण तत्वों की ग्राह्यता की शक्ति बढ़ती है। इसके साथ–साथ इसका उपयोग बुखार उतारने, मलेरिया ज्वर उतारने, डिसेंट्रिया तथा मरोड़ों के उपचार हेतु किया जाता है। उदर रोगों के उपचार, पेट के कीड़ों के उपचार, हिचकी की सिंति तथा आंतरिक रक्त स्राव रोकने में भी चिरायता प्रभावी पाया गया है। शराब में कड़वाहट लाने, कपड़ों को पीला रंग देने, हृदय दौर्बल्य, एक्जीमा के उपचार तथा चर्म रोगों के उपचार में भी चिरायता उपयोगी पाया गया है। चिरायता की छः से आठ माह की फसल से लगभग 5 क्विंटल पंचांग प्राप्त हो जाता है जिसकी बिक्री दर 100 रु. प्रति कि.ग्रा. मानी जाए तो इससे 50000 रु. की प्राप्तियां होंगी इन प्राप्तियों में से समस्त खर्चों को निकाल दिए जाने पर किसान को प्रति एकड़ लगभग 35000 रु. का शुद्ध लाभ प्राप्त होगा।

3.2 पहाड़ी क्षेत्रों में पाये जाने वाले कुछ दुलर्भ पौधे

3.2.1 एंजेलिका ग्लौका (*Angelica Glauca* Edgew) : एंजेलिकाग्लौका एक बहुवर्षीय, चमकयुक्त, सुगन्धित शाकीय पौधा है। तना खोखला, 1 से 4 मी. लम्बा जिसमें पामेटलि डिवाइडेड (हथेलीनुमा) पत्तियां होती हैं। फूल बैंगनी–सफेद जो कि संयुक्त छत्रकों में पाये जाते हैं। फल चपटे एवं नालीदार होते हैं, जड़ विभिन्न शाखाओं में विभक्त एवं नालीदार जो कि स्वाद में मीठी–कसैली होती है। अपने बहुपयोग के लिये जाना जाता है। सुगन्धित जड़ प्रयोग में आने वाला भाग है। जड़ों को सुखाकर एवं पीसकर मसाले के रूप में प्रयोग किया जाता है। दूध के साथ लेने पर खांसी एवं अन्य फेफड़ों की व्याधियों में लाभदायक होता है। कब्ज, वात, मूत्र जनित रोगों, उदर व्याधियों एवं गाय–भैसों के रिन्डरपेस्ट रोग में प्रयुक्त होता है। स्त्रियों में लिंग जनित व्याधियों में इसके वृहद उपयोग के कारण इसे "मादाजिनशेग" के नाम से भी जाना जाता है। अफगानिस्तान, पश्चिमी पाकिस्तान, उत्तर पश्चिम से पूर्व हिमालय में 1800 से 3700 मी. ऊंचाई पर। उत्तरांचल–रालम घाटी, नीतिघाटी, बंदरपूछ, दवाली, फरकिया

आरनेबिया बेन्थमाई

(एफ.आर.आई. हरबेरियम), यमुनोत्री के निकट, दूनागिरी, हेमकुण्ड, बम्पा, रुद्रनाथ, सन्दरडूंगा घाटी (बी.एस.आई हरबेरियम)। हिमाचल प्रदेश– राहला जंगल, वांगटू, बशरस्टेट, कांगन घाटी, सुग्री, शिमला, पुलगा, नौमोड़, दोहरा, ऊँच, सालंग नाला, फौजल। जम्मू कश्मीर–वास्कर, भद्रवाह, कंजनवन (एफआर.आई. हरबेरियम)।समतल से तीव्र नमी युक्त एवं घास युक्त ढेलानों पर मुख्यतः वृक्ष सीमा क्षेत्रों, सबएल्पाइन जंगलों में बुरांस, बांज, चिनार, एवं पाइसिया के जंगलों के मध्य पाया जाता है। प्रस्फुटन : मार्च के अंत से अप्रैल तक, फूलों के खिलने का समय : अगस्त से सितम्बर, फूल सितम्बर के मध्य तक कच्चे बीजों में परिवर्तित हो जाते हैं तथा प्राथमिक छत्रक में

बीजों का निर्माण अन्य छत्रकों (द्वितीयक एवं त्रितीयक) से पहले होता है।

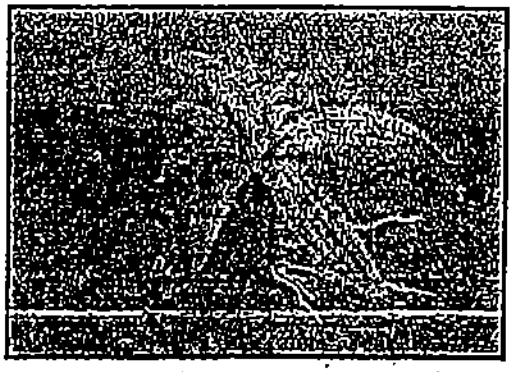

विलगन : अक्टूबर माह के अंत तक। सितम्बर माह के अंत से मध्य अक्टूबर तक। बीजों को भली–भांति हवा में सुखाना चाहिए एवं नमी मुक्त बीजों को सामान्यतः ठण्डे स्थान पर पॉलीबैग या ऐसे प्लास्टिक जार में संग्रहित करना चाहिए, जिसमें हवा एवं नमी का आदान–प्रदान न हो। बीजों के संग्रहण करने पर उत्तरोतर अंकुरण क्षमता का ह्रास होता है। अतः बीजों की बुआई शिघ्रातिशीघ्र करनी चाहिएं। विशेष आक्सिन का उपचारण बीजों के अंकुरण प्रतिशत में वृद्धि करते हैं (अनुपचारित 64 प्रतिशत, उपचारित 91 प्रतिशत) और औसत अंकुरण अवधि को घटाता है। विशेष नत्रजन यौगिक का उपचारण भी सामान्यतः अंकुरण प्रतिशत को बढ़ाता है परन्तु इसका उपचारण अधिक ऊँचाई वाले स्थान (> 3000मी.) से एकत्रित बीजों के लिए ज्यादा सक्षम है।

कायिक प्रवर्धन : कायिक प्रवर्धन जड़ों द्वारा सम्भव होता है। जड़ों का केवल राइजोमेटस भाग ही प्रवर्धन में सक्षम होता है। शेष भाग औषधीय उपयोग में प्रयुक्त किया जा सकता है। उपयुक्त मात्रा में आक्सिन के उपचारण से प्रतिशत जड़ निर्माण में वृद्धि होती है।

उतक संवर्धन : कैलस निर्माण सामेटिक एम्ब्रयोजैनेसिस द्वारा त्वरित गति से नई पौध का निर्माण किया जा सकता है। इस विधि से मातृ गुण वाले पौधों का गुणन होता है। प्राप्त भ्रूणों को जैल कैप्सूल (3 प्रतिशत सोडियम एल्जीनेट एवं 2 प्रतिशत कैल्सियम क्लोराइट) में निश्चेतित कर कृत्रिम बीजों का निर्माण किया जा सकता है। इस विधि से प्राप्त पौधों को मिट्टी, बालू एवं पीट मास के 1 : 1 : 1 अनुपातिक मिश्रण में रोपित कर अनुकूलित किया जा सकता है।

कृषिकरण : उपरोक्त में से किसी भी विधि द्वारा निर्मित पोधों को कृषिकरण हेतु प्राथमिक पौधे के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। बीजों द्वारा

निर्मित पौधे प्राकृतिक आवास के नजदीकी ऊँचाई वाले स्थानों पर सर्वोत्तम परिणाम देती है और लगभग 61 प्रतिशत तक पौधे जीवित एवं स्वस्थ रहते हैं। प्राकृतिक आवास के निकट निवास करने वाले कृषक इस विधि द्वारा चोरा का कृषिकरण कर सकते हैं। इसकी जड़ें 55–80 रु. प्रति किग्रा. शुद्ध भारत के हिसाब से बिक जाती हैं।

3.2.2 आरनेबिया बैन्थमाई (*Arnebia benthamii*) : आरनेबिया बैन्थमाई (पर्याय– मैक्रोटामियाबैन्थमाई), एक बहुमूल्य हिमालयी औषधि पादप है। यह पश्चिमी हिमालय के लिए प्राथमिकता निर्धारित पौधों पर द्वितीय स्थान पर आता है। यह प्रकन्दी रोमिल 30–90 सेमी. तक ऊँची शाकीय वनस्पति है, जिसका काण्ड पुष्प दंड को धारण किये सीधा होता है। जड़ें मोटी व पुराने पत्रकों से ढकी होती हैं। मूलजपत्र (2.5×1.5 सेमी.) लम्बे, भालाकार रूक्ष व तीक्ष्णाग्र होते हैं, उपरीपत्र छोटे (लगभग 7 × 1 सेमी.) होते हैं। मई–जुलाई माहों में लाल जामुनी पुष्प रोमिल सहपत्रों से घिरे रहते हैं और यह लगभग 30 सेमी. लम्बी शाखा में चारों तरफ से घिरे रहते हैं। इसके फल 1 सेमी. लम्बे नटलैट के रूप में होते हैं।

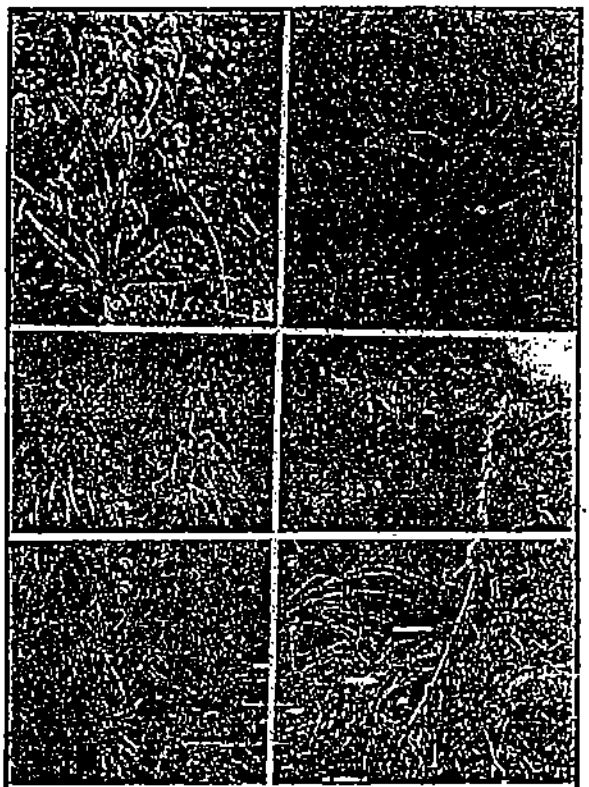
आरनेबिया बैन्थमाई

उपयोग : यह आयुर्वेदिक औषधि 'गौजवान' का एक मुख्य घटक हैं इसमें प्रतिजैविक, प्रतिकवक, सूजन घटाने तथा घाव ठीक करने के गुण होते हैं। इसकी जड़ों से लाल रंजक (शिकोनिन) प्राप्त होता है। यह औषधीय गुणों से परिपूर्ण होता है। इस प्रजाति में शक्तिवर्धक

टॉनिक तथा मूत्रवर्धक गुण होते हैं। इसके पुष्प दण्डों का प्रयोग शर्बत और जैम बनाने में किया जाता है। यह जीह्वा, गले, ज्वर तथा हृदय रोगों में उपयोगी है। *अरनेबिया* जीनस की जड़ों को लगभग 3000 वर्षों से अधिक समय से एशिया तथा यूरोप में त्वचा सम्बन्धी व्याधियों जैसे कटने, जलने के उपचार में प्रयोग किया जाता रहा है। इसको रक्त उष्णता मिटाने व रक्त प्रवाह बढ़ाने; विषाक्त पदार्थों के निकास हेतु भी पहचाना गया है। दवा को वाह्य लेप के रूप में एक्जिमा दाग व जलोड मिटाने हेतु उपयोग किया जाता है।

भौगोलिक वितरण : यह एल्पाइन तथा उप एल्पाइन क्षेत्रों में कश्मीर, कुमाऊँ, गढ़वाल में तथा नेपाल की लगभग 3000–3900 मी. तक की ऊँचाई पर पायी जाती हैं इन क्षेत्रों में कुछ प्रमुख स्थान जैसे गढ़वाल में हरि की दून, हिमतोली, दयारा, केदारनाथ, नीलकंठ, फूलों की घाटी, कागभुसन्ड, गौरसों, जेलम, लाताखरक, सैनीखरक, गरपग, द्रोणागिरी, गलारी तथा कुमाऊँ में पिण्डारी, सुन्दरढूँगा, रलम, पंचाचूली, तृसूलीगाड; हिमाचल प्रदेश में ग्रेट हिमालयन राष्ट्रीय उद्यान, पिन घाटी, चम्बा, किन्नौर, रोहतांग, लाहौल एवं स्पीती; कश्मीर में कुररम घाटी, देवशायी, मकरा, कगन घाटी, विदोरी, अलीहाबाद तथा पीर पंजाल।

वास स्थान : उप एल्पाइन क्षेत्रों में *आरबेबियाबैन्थमाई* नम छायादार स्थानों में *बिटुलायूटिलिस, रोडोडैन्ड्रानएन्थेपोगोन, सैलिक्सडिसपरमा, पाइनसवा लिचियाना, रोसामैक्रोफाइला, वाइवरनमकोटिनिफोलियम* आदिके मध्य पाया जाता है। तथा शाकीय पौधे जैसे *सैलिनमवैगीनेटम, सीरसीयमवालीची, हीरा किलियम, फलोमिसब्रैक्टिओसा, पोटेन्टिलाएट्रोसेंगयूनिया* आदि के मध्य पाया जाता है।

अल्पाइन क्षेत्रों में यह धूप वाले स्थानों पर *डैन्थोनिया कैश्मीरिएना* के मध्य पाया जाता है। अन्य प्रजातियां जैसे *रोडोडैन्ड्रोन एन्थोपोगोन, सैलिक्स डिस्परमा, ज्यू निपेरस मैक्रोफाइला, कोटोनिएस्टर, एनाफिलिसकौनटोरटा, सिरसियम वालीची, फ्रैगेरिया न्यू विकोला, रिहयम इमोडी, सैलीनम टेनूफोलियम, जूरीनैलामैक्रोसिफैला, मोरिनालौनजीफोलिया* आदि इसके साथ पायी जाती हैं।

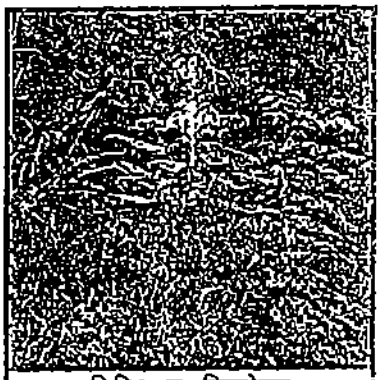
हिडिक्यम स्पिकेटम

ऋतुजैविकी : प्रस्फुटन–मध्य मई (बर्फ पिघलने के बाद), पुष्प दंड का बढ़ना–मध्य जून, फूलों का खिलना–जून आखिरी से जुलाई प्रारम्भ तक सभी फूल स्पाईक में लगभग एक साथ खिलते हैं। फूल बैंगनी रंग के होते हैं। दल पांच, एक दूसरे से चिपके हुए होते हैं, पुकेसर 5 दंलपुज में होते हैं, पराग कोष लम्बाई में दो भागों में खुलते हैं। वर्तिका अंण्डाशय के मध्य से निकलता है। पुष्पों में विभिन्न प्रकार के कीट जैसे बम्बल बी, तितली, चींटी एवं बग्स पराग एकत्र करते हुए पाये जाते हैं।

इस प्रजाति में दो तरह के पुष्प होते हैं (क) पिन पुष्प (वर्तिका लम्बी, पुकेसर छोटे) (ख) थरम पुष्प (वर्तिका छोटी, पुकेसर लम्बे)

पुष्प ऊपर से नीचे की तरफ सूखते हैं। बैंगनी रंग के पुष्प उम्र के साथ–साथ सफेद रंग में परिवर्तित होते हैं। पत्तियां नीचे से ऊपर की तरफ सूखती हैं। जुलाई के अंतिम सप्ताह से फल बनने शुरू होते हैं जो अगस्त अंतिम से सितम्बर प्रथम सप्ताह तक परिपक्व हो जाते हैं। सितम्बर के अंतिम सप्ताह से पौधा सूखने लगता है, पत्तियां, पुष्प तथा सम्पूर्ण पौधा अक्टूबर तक सूख जाता है।

बीज संग्रहण एवं भंडारण : अक्टूबर का प्रथम सप्ताह बीज संग्रहण के लिये उपयुक्त है। मुख्यतः परिपक्व बीजों की प्रावस्था का समय सभी स्थानों पर एक सा ही होता है। बीज एकत्रण के बाद उन्हें धूप में सुखाकर (3 दिन) कागज के लिफाफों में सामान्य कमरे के तापमान में रखा जाता है। बीजों का भंडारण लम्बे समय तक रेफ्रीजरेटर (4 डिग्री से.) में किया जाता है।

बीज अंकुरण : मार्च का महीना बीज बुआई के लिए उपयुक्त है। रेफ्रीजरेटर में रखे हुए बीज (14 दिन) पौधशाला में बलुई मिट्टी (1:1 मिट्टी और बालू) में अच्छे उगते हैं। बीजों को जमीन में ज्यादा गहराई तक नहीं बोना चाहिए। सप्ताह में दो बार या आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए। प्रत्यारोपण के लिए 3 पत्ते वाले पौधे उपयुक्त रहते हैं। पौधे में पंक्ति से

विभिन्न प्रकार के हिडिक्यम स्पिकेटम

पंक्ति तथा पौध से पौध की दूरी 30 सेमी होनी चाहिए। (अधिकतम अंकुरण–87 प्रतिशत, अधिकतम जीवित पौधों की संख्या (सरवाईवल)– 67 प्रतिशत।

कायिक प्रवर्धन : पुष्प दण्ड वाले पौधे कायिक प्रवर्धन के लिये सबसे उपयुक्त होते हैं। क्योंकि अन्य पौधों की अपेक्षा इसमें अधिक कलियां होती हैं। परिपक्वता के पश्चात इन पौधों की जड़ों के टर्मिनल हिस्सों को कायिक प्रवर्धन के प्रयोग में लाया जा सकता है। 4 डिग्री से. तापमान पर 40 दिन तक जड़ों को रखने से रूटिंग प्रतिशत में वृद्धि देखी गई है।

जैसा कि देखा गया है कि यह प्रजाति अपने प्राकृतिक आवास में बलुई, पथरीली एवं नम घासीय ढलानों में पायी जाती है अतः इसकी खेती ऊँचाई वाले स्थानों में हल्के ढलानों वाले क्षेत्र में की जा सकती है। यह उन समतल भूमि, जिसमें पानी की निकासी अच्छी हो भी उगाई जा सकती है। पानी के जमाव के कारण इसकी जड़ों के सड़ने का खतरा बना रहता है। कायिक प्रवर्धन का उचित समय जून–जुलाई, सिंचाई सप्ताह में दो बार।

उतक संवर्धन : धीमा पुर्नदुभवन चक्र, अत्यधिक दोहन और प्राकृतिक आवासों का क्षरण प्रजाति के लम्बे समय तक बने रहने में मुख्य जटिलतायें हैं। ऐसी स्थिति में, पादप ऊतक संवर्धन जैसी वैकल्पिक तकनीक पौधों के अधिक से अधिक उत्पादन के लिये आवश्यक है। माईक्रोप्रोपेगेशन तकनीक से समान गुणों वाले पौधों का उत्पादन किया जा सकता है, बहुमूल्य जर्मप्लाज्म को संरक्षित किया जा सकता है।

कृषिकरण : उपरोक्त में से किसी भी विधि द्वारा निर्मित पौधों को

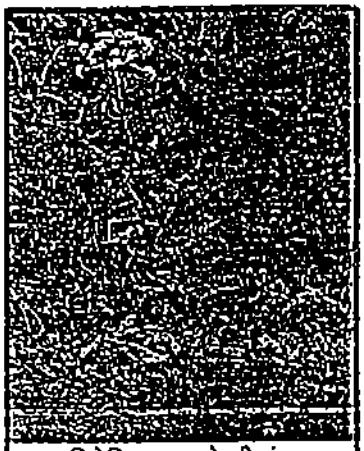
हिरेक्लियम केन्डीकंस

कृषिकरण हेतु प्राथमिक पौधे के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। बीजों द्वारा निर्मित पौधे प्राकृतिक आवास के नजदीकी ऊँचाई वाले स्थानों पर सर्वोत्तम परिणाम देती है और लगभग 67 प्रतिशत तक पौधे जीवित एवं स्वस्थ रहते हैं। प्राकृतिक आवास के निकट निवास करने वाले कृषक बीज एवं कायिक प्रवर्धन विधि द्वारा बालछड़ी का कृषिकरण कर सकते हैं।

कटाई : जैसा कि जड़ों के बाह्य संरचना से पता चलता है, यह प्रजाति अपने जीवन के चौथे वर्ष में पुष्प धारण करती है। जैसे–जैसे आयु में वृद्धि होती है जड़ों का व्यास बढ़ता है और उनमें दरारें पड़ती हैं। पुष्प धारण करने के बाद जड़ें अपने मध्य से अपघटित होनी शुरू हो जाती हैं, और 3 से 5 भागों में विभाजित हो जाती हैं। इस प्रकार पुष्प बनने तथा जड़ों के विघटन का क्रम चलता रहता है। पुष्प दण्ड वाले पौधों को सतता के साथ उपयोग किया जा सकता है।

पुष्प अवस्था में कटाई के निम्न लाभ हैं– (क) जीवन चक्र का पूरा होना। (ख) अधिकतम टर्मिनल बड्स। (ग) उत्तम रासायनिक उपलब्धता। सम्पूर्ण पौधा 200 रु. प्रति किलो सूखा बिक जाने से आय होती है।

3.2.3 हिडिक्यम स्पिकेटम *(Hedychium spicatum Smith)* : हिडिक्यम स्पिकेटम एक वर्षीय राइजोम युक्त, शाकीय पादप है। इसकी लम्बाई 1 मीटर तक होती है। यह एक सीधा शाकीय तथा सुगन्धित, राइजोमयुक्त पादप हैं राइजोम स्पष्ट, घने आकार का होता है, जिसकी मोटाई 7.5 सेमी. होती है। राइजोम क्षैतिज में मृदा से ढके रहते हैं। भूरे रंग का घना, रेशानुमा जड़ से गुच्छों में विभाजित होता है। पत्तियां 30 सेमी. या अधिक लम्बाई की होती हैं। पुष्पक्रम असीमाक्षी होता है। पुष्प सफेद रंग के होते हैं। कैप्सूल ग्लोबोस होता है।

उपयोग : इस प्रजाति का उपयोग, आयुर्वेदिक व यूनानी, दवाओं में सगन्ध तेल के रूप में होता है। इसकी जड़ों का उपयोग पेट की व्याधियों

तथा यकृत की अनियमितता को सही करने में होता है। डाइरिया, गोजन विकास, सूजन घटाने, दमा, दर्दनाशक तथा मस्तिष्क की व्याधियों में इसका प्रयोग किया जाता है। यूनानी दवाईयों में यह एफ्रोडिसियक के रूप में सुदर्शन चूर्ण तथा चन्द्रप्रभा–वटी बनाने में प्रयुक्त होता है।

राइजोम का उपयोग सौन्दर्य प्रसाधन की सामग्री बनाने में, सुगन्ध और साबुन उद्योगों तथा इत्र व सगन्ध पाउडर बनाने में इसके राइजोम का प्रयोग किया जाता है। राइजोम का चूर्ण तम्बाकू को सुगन्धित करने में भी प्रयोग किया जा सकता है। इसको होली में उपयोग किये जाने वाला अबीर जो रंगों तथा रंगाई के रूप में प्रयुक्त होता है, के बनाने में किया जाता है। इसका उपयोग बागवानी में सजावटी पौधे के रूप में भी किया जाता है। पत्तियों का उपयोग चटाई बनाने, और मांस एवं दालों को मुलायम बनाकर पकाने में होता है।

भौगोलिक वितरण : प्रजाति हिमालय के 800–3000 मी. तक ऊँचाई पर पायी जाती है। यह पश्चिम हिमालय, नेपाल, कुमाऊँ, देहरादून, टिहरी तथा दार्जिलिंग और सिक्किम के तराई भागों में पायी जाती है।

वास स्थान : प्रजाति छायादार तथा नमी युक्त बांज, चीड़ एवं मिश्रित वनों में बहुतायत में पायी जाती है।

ऋतु जैविकी : *पौध प्रस्फुटन* : अप्रैल–मई; *तने का विस्तार* : जून–जुलाई, *पुष्पों के खिलने का समय* : अगस्त–सितम्बर। *फलों का निर्माण* : अक्टूबर तथा विलगन : दिसम्बर में होता है।

बीज संग्रहण एवं भंडारण : परिपक्व फलों को एकत्रित करने का उचित समय नवम्बर के अंतिम सप्ताह में होता है। एकत्रित बीजों को कमरे के ताप लगभग (26 डिग्री से.ग्रे.) पर लगभग दस दिनों तक सूखाया तथा हाथ से पल्प हटाया जाता है। बीजों को कागज की थैलियों में एकत्रित कर लिया जाता है। इस परिस्थिति में पौधे की अंकुरण क्षमता को बनाये रख कर लगभग 6

महीने तक सुरक्षित रखा जा सकता है। अधिक समय तक बीजों को शीतलक के सहारे संरक्षित किया जा सकता है।

बीज अंकुरण : निचले स्थानों पर बीजों के अंकुरण का उचित समय मार्च का महीना होता है परन्तु अधिक ऊँचाई वाले स्थानों पर अप्रैल–मई में बीजों का अंकुरण उचित होता है। बीजों को 6 घंटे तक पानी में भिगोकर बोने से अच्छे अंकुरण (80 प्रतिशत) परिणाम मिलते हैं। बीजों को अधिक गहराई पर नहीं बोना चाहिए। सप्ताह में दो बार या आवश्यकतानुसार पानी देना चाहिए। पौधों का स्थानान्तरण अंकुरण के 15 से 20 दिन बाद करना चाहिए। पौधों तथा पंक्तियों के बीच की दूरी भी 1 इंच होनी चाहिए।

ऊतक संवर्धन : ऊतक संवर्धन परम्परागत विधि के प्रतिस्थाई भूमिका निभाते हैं। इसके द्वारा अधिक मात्रा में संगुणन कर इस प्रजाति के पादपों को बढ़ाया जा सकता है। *हिडिक्यम स्पिकेटम* का एक राइजोम अंश के उपयोग से प्रभावी माइक्रोप्रोपेगेशन प्रोटोकाल बनाया जा चुका है। जिसमें राइजोम को एक्सप्लान्ट के रूप में लिया गया है। इस प्रोटोकाल का उपयोग औषधि निर्माता कम्पनियों द्वारा एवं समूहों को पुनर्स्थापित करने में किया जा सकता है। इसका राइजोम 15–16 रु. प्रति किग्रा. बिक जाता है।

3.2.4 हिरेक्लियम केन्डीकंस (पतराला) (*Heracleum candicans*) : हिमालय का बहुमूल्य संकटग्रस्त औषधीय पौधा है। यह शाखा युक्त बहुवार्षिक 80 से 200 सेमी. लम्बा होता है, पत्तियां धारीदार, तना मांसल होती है। पिटीयोल 5 से 35 सेमी लम्बा तथा विस्तार पूर्वक पत्तियों से ढका रहता है। पत्तियां संकरी धारियों में बटी रहती हैं। पुष्प सफेद रंग का होता है। फल 4 से 12 मिमी. लम्बे होते

हैं जो सीधे उर्ध्वाधर स्तर से जुड़े हुए तथा मध्यवर्ती भाग में झुके रहते हैं।

उपयोग : जड़ का उपयोग कई व्याधियों के महत्वपूर्ण इलाज में किया जाता है। सूर्य के ताप से बचाव, ल्यूकोडर्मा स्पासमोलिटक तथा कैंसर में किया जाता है। फलों का उपयोग मासिक रोगों के लिए टॉनिक, ल्यूकोरिया, रजोधर्म सम्बन्धी व्याधियों के लिए तथा मसालों के रूप में किया जाता है। बीज का उपयोग उदर तथा पाचन सम्बन्धी रोगों के लिए किया जाता है। तना तथा पत्तियां खाने योग्य, जड़ चूर्ण त्वचा सम्बन्धी रोगों में प्रयोग किया जाता है।

भौगोलिक वितरण : उत्तरी शीतोष्ण भाग तथा कुछ उष्ण कटिबन्धी पर्वतीय प्रदेश। उत्तरी पश्चिमी हिमालय के एल्पाइन क्षेत्र का स्थानिक (इन्डैमिक) है। क्षेत्र में कुछ जगह जहां से यह प्रजाति चिन्हित हुई है निम्नवत हैं स्राहन, डलहौजी, ऊँच, नौमोड़, सौलग, रोहताग पुरवानी (हिमाचल प्रदेश); धनधूरा, कुकुछिना, दूनागिरी, टीफिनटाप, लरियाकाटा, मुक्तेश्वर, पिथौरागढ़ पंचाचूली (कुमाऊँ); औली, मसूरी, गरपग, द्रोणागिरी (गढ़वाल)।

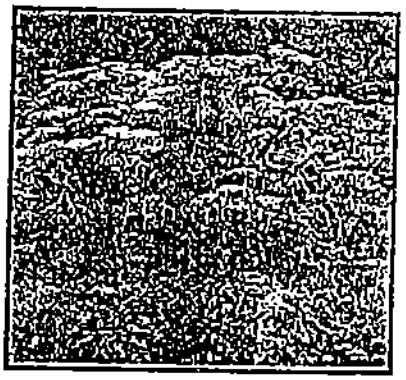

वास स्थान : यह प्रजाति समुद्र तलसे 2000 से 3800 मी. तक की ऊँचाई वाले स्थानों में घास के मैदानों और ढलानों में तथा चट्टानों में पायी जाती है। यह प्रजाति मुख्य रूप से चौड़ी पत्तियों वाले वनों जैसे बांज, एसर, देवदार में पायी जाती हैं।

ऋतुजैविकी : प्रस्फुटन मई महीने के अंतिम सप्ताह में होता है। पुष्प खिलने का समय : जून–जुलाई। फलों का बनना : अगस्त और फलों का परिपक्व होना : सितम्बर।

बीज संग्रहण तथा भंडारण : सितम्बर का अंतिम सप्ताह तथा अक्टूबर का प्रथम सप्ताह बीजों को एकत्रित करने का उचित समय होता है। संग्रहरण के बाद बीजों को सूर्य के प्रकाश में लगभग 5 दिन सुखाने के पश्चात कमरे के ताप में भंडारित करते हैं। कागज की थैलियों में बीजों को

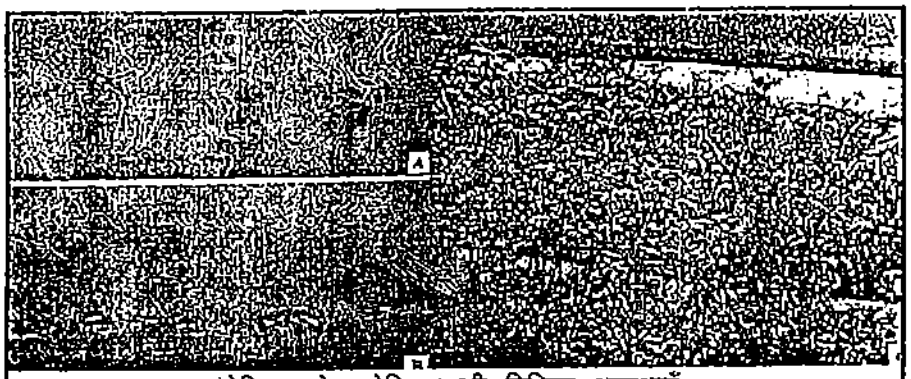

सेलिनम टेन्युफोलियम की विभिन्न अवस्थाएँ

भंडारण करना लाभदायक होता है। इन बीजों को 4 डिग्री से. पर शीतलक पर रखने से भंडारित कर 3 वर्ष तक उपयोग कर सकते हैं।

बीज अंकुरण : नवम्बर माह से बीज अंकुरण का उचित समय होता है। 14 दिन तक शीतित (प्रीचिल्ड) बीज जिन्हें पौधालय में बालू व मिट्टी के 1:1 में बोया जाता है, अधिक बीजांकुरण देते (89 प्रतिशत) हैं, (अनुपचारित 17.8 प्रतिशत)। तीन पत्ती की अवस्था में पौधों को रोपित किया जा सकता है। पौधालय में पौधे से पौधे की बीच की दूरी 30 सेमी. होनी चाहिए।

कायिक प्रवर्धन : पौधें का कायिक प्रवर्धन राइजोम द्वारा सफलता पूर्वक किया जा सकता है। बीज बनने के पश्चात कटाई के उपरान्त हम इसका सफलता पूर्वक उपयोग करते हैं। कायिक प्रवर्धन शीर्ष राइजोम द्वारा इसमें आई.बी.ए. (इन्डोल ब्यूटेरिक अम्ल) की कम मात्रा में (अनुपचारित 42 प्रतिशत, उपचारित 68 प्रतिशत) उपचारित करने पर अच्छा होता है। कलमों में 1:1 का रेत, मिट्टी डालकर लगाने चाहिए। पौधे से पोधे के बीच की दूरी 30 सेमी. रखी जाती है। हफ्ते में तीन बार या आवश्यकतानुसार पानी देना चाहिए।

ऊतकसंवर्धन : इस प्रजाति में धीमा अंकुरण चक्रीय प्रक्रम तथा बीजों का अंकुरण कम होना एक समस्या है अतः ऊतक संवर्धन तकनीक पौधों के बहुउत्पादन एवं संरक्षण के लिए उपयोगी होगी। विभिन्न पादप अंश (बीज अंकुरण द्वारा प्राप्त भ्रूण उत्पादन द्वारा इन विट्रो प्रोपोगेशन से प्रजाति का बहुत उत्पादन किया जा सकता है। इसकी सूखी जड़ 20--25 रु. प्रति किग्रा. बिकता है।

3.2.5 ससुरिया ओबवेलेटा (ब्रहमकमल) (*Saussurea obvallata*)

: एक बहुवर्षीय शाकीय पौधा है। इसका तना छोटा साधारण होता है, तथा सफेद रंग की पत्तियों से बने पुष्प में समाप्त होता है जो 5–15 एकीन से भरे पुष्प सिरों को ढकता है। ये शिरे संख्या में कई और 1.5–2.5×1–1.5 सेमी. की परिमाप के तथा एक झुण्ड में होते हैं। इन्हें हल्के पीले रंग की पत्तियां ढकती हैं जो 11 से 14 सेमी. लम्बी तथा धारीदार होती हैं। इन सिरों में जुड़े एकीन भूरे रंग के पतले लम्बे अंडाकार एवं धारीदार होते हैं। इनमें 7–8 मि. मी. लम्बे पैपस जुड़े होते हैं। जड़ें बहुत मोटी और काली पत्तियों के अवशेषों से ढकी होती हैं।

उपयोग : ससुरिया ओबवेलेटा एक महत्वपूर्ण प्रजाति है जो अपने पुष्प व्यवसाय के लिये दोहन की जाती है। इसके पुष्प धार्मिक दृष्टि से अति पवित्र माने जाते हैं। स्थानीय पुरुष इन पुष्पों को दूर–दूर से इकट्ठा करते हैं तथा स्थानीय देवी–देवताओं को चढ़ाये जाते हैं तथा तीर्थ यात्रियों को बेचते हैं। इसके अतिरिक्त यह प्रजाति मूत्र रोग; वात, पाचन सम्बन्धी बीमारियों के उपचार में औषधि के रूप में प्रयुक्त होती है। पत्तियों एवं जड़ से बनी औषधि चोट एवं जले के उपचार हेतु उपयोग में लायी जाती है।

भौगोलिक वितरण : अलटाइ माउंटेन, भारत, नेपाल, भूटान, बर्मा, चीन एवं पाकिस्तान। भारत में यह कश्मीर से सिक्किम तक वितरित है। उत्तरांचल में इसके समूह समुद्र तल से 3800–4800 मी. की ऊँचाई में पाये जाते हैं। हरबेरियम रिकार्ड के अनुसार उत्तरांचल में यह प्रजाति 18 स्थानों हत्ता घाटी, बगुआवासा, कालू विनायक, रूप कुण्ड, हेमकुण्ड, फूलों की घाटी, शिवलिंग, सहस्त्र ताल, केदारनाथ, नंदादेवी, धरांशी, नीलकंठ, तुंगनाथ (गढ़वाल); पिंडारी, खालिया टॉप, छिपलाधुरा, रलम घाटी (कुमाऊँ) आदि से है।

वास स्थान : यह प्रजाति घास वाली चट्टानों पर उगती है तथा अधिकतर *एनाफेलिस ट्रिप्लीनेर्विस* प्रचुर समुदाय में होती है।

ऋतु जैविकी : प्रस्फुटन : जून; पुष्प खिलने का समय : अगस्त; एकीन बनने का समय : अगस्त माह के अंतिम सप्ताह से प्रारम्भ होता है जो अक्टूबर में परिपक्व होते हैं; सेनेसेंस : अक्टूबर माह के अंतिम सप्ताह में हालांकि यह सभी अवस्थाएं ऊँचाई एवं स्थिति के साथ बदलती हैं, उदाहरणार्थ

ऊँचाई वाले इलाकों में पुष्प जल्दी खिलते हैं।

बीज एकत्रण एवं भंडारण : मध्य अक्टूबर बीज एकत्रित करने का सबसे अच्छा समय होता है। इस समय एकत्रित बीज 80 प्रतिशत जीवन शक्ति प्रदर्शित करते हैं जो समय के साथ–साथ घटती रहती है। घरेलू फ्रिज में 4° से.ग्रे. पर इन बीजों का संरक्षण लगभग 15 माह तथा उससे कुछ अधिक समय तक किया जा सकता है।

बीज अंकुरण : यह प्रजाति अत्यधिक अंकुरण क्षमता रखती है। इसके बीज सुषुप्तावस्था में नहीं रहते। जब इन्हें अनुकूल वातावरण मिलता है तो यह अच्छा अंकुरण देते हैं। अंकुरण के लिए कोई खास उपचार नहीं चाहिए, मध्य स्तर का तापमान (25 डिग्री से.गे.) अंकुरण के लिए काफी है। प्राकृतिक मृदा आवश्यकताओं के समान वातावरण सम्भवतः इसके बीजों को अंकुरित करने के लिए उपयुक्त है।

कायिक प्रवर्धन : प्राकृति में यह प्रजाति बीजों तथा जड़ द्वारा प्रवर्धन करती है। किंतु प्रयोगशाला में इसका कायिक प्रवर्धन जड़ों के शीघ्र खराब हो जाने के कारण नहीं किया जा सका है।

ऊतक संवर्धन : इस प्रजाति की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए ऊतक संवर्धन एक अन्य माध्यम हो सकता है जिससे प्रजाति की पोध को बड़ी मात्रा में तैयार किया जा सकता है। इस विधि से उच्च गुणों वाले जीनोटाइप का बड़े पैमाने में किसी भी मौसम में उत्पादन किया जा सकता है। विषाणु रहित पौध से इस प्रजाति के पुर्नउत्पादन का तरीका बनाया गया है। इस तरीके से एक पादप अंश से 90 दिनों में लगभग 19 पौधे तैयार किए जा सकते हैं। इसका पुष्प 5–10 रु. प्रति बिकता है।

3.2.6 सेलिनम टेन्युफोलियम (भूतकेसी) (*Selinum tenuifolium*) : यह उच्च हिमालयी बहुमूल्य औषधीय पौधा है। यह एक शाकीय पादप है। तने की लम्बाई 1 से 1.5 सेन्टीमीटर तथा खोखला होता है। तने का सतही भाग रेशेदार होता है, पत्तियां लगभग 10–20 से.मी. लम्बी होती हैं। 3 से 5 पत्तियों में सतही संयुक्त व समरिपच्छी तरह की होती है।, जो खण्डों में विभाजित होती हैं, एवं दन्तों के आकार की होती हैं। पुष्प असीमाक्षी एक व्यासमित होती है। घंटाकार पिटल्स, सफेद रंग के होते हैं। फल इलिपटिक

चपटटा, अनुदैहर्य प्रकार का अभूषणपोषी होता है।

उपयोग : इस प्रजाति का उपयोग विभिन्न प्रकार के रोगों के ईलाज के लिये किया जाता है और आयुर्वेदिक दवाईयां बनायी जाती हैं। वाष्पशील तेल इसके जड़ों द्वारा प्राप्त होता है। यह ऐसीटिलिनिक यौगिक के गुणों से युक्त होता है इसका उपयोग मानसिक व्याधियों, अस्थमा में लाभदायक होता है। इसका जटामांसी के विकल्प के रूप में उपयोग किया जाता है।

भौगोलिक वितरण : यह प्रजाति हिमालय में 2100–4800 मी. तक की ऊँचाई पर पायी जाती है। इसके वितरण के पूर्व विदित स्थल इस प्रकार है : कांगड़ा, कुल्लू, चम्बा, किन्नौर, सिमौर, शिमला (हिमाचल प्रदेश); पिन्डारी, अस्कोट, सुन्दरढूँगा, लाताखरक, मसूरी, तुंगनाथ, रुद्रनाथ, केदारनाथ, भ्यूधार घाटी, हर की दून, पवाली कांठा, खिर्सु फूलों की घाटी (उत्तरांचल) में पायी जाती है।

वास स्थान : एल्पाइन और सबएल्पाइन के खुले मैदानों में पायी जाती है। यह प्रजाति एजिलिका व पौलीगोनम के साथ पायी जाती है।

ऋतु जैविकी : पुष्प खिलना : जुलाई से अगस्त। फलों का परिपक्व होना : सितम्बर से अक्टूबर। पौधा का सूखना : अक्टूबर के अंतिम सप्ताह में।

बीज संग्रहण एवं भंडारण : अक्टूबर माह बीजों के संग्रहण के लिए उचित है। बीजों को संग्रहित कर सूर्य के प्रकाश में सुखाकर, इनको कमरे के ताप पर कागज की थैलियों में भंडारित किया जाना चाहिए। शीतलक की सहायता से बीजों को लम्बे समय तक भंडारित किया जा सकता है।

बीज अंकुरण : नवम्बर माह बीजों को अंकुरित करने का सबसे अच्छा समय होता है। बीज पॉलीथीन की थैलियों में बालू, मिट्टी 1:1 के अनुपात में अच्छे परिणाम 87 प्रतिशत देते हैं। तीन पत्तियों की प्रावस्था में पौधे प्रतिस्थापित किये जाने चाहिए। पादप से पादप की दूरी 20 सेमी. होनी चाहिए।

कायिक प्रवर्धन : इस पादप की जड़ों की कलमों के एपिकल भाग से कन्दों और प्रकन्दों का उपयोग कायिक प्रवर्धन के लिए किया जा सकता

है। कटिंग को पौधालय में मिट्टी व रेत 1:1 से तैयार क्यारियों में रोजा जाना चाहिए। पादप से पादप के मध्य की दूरी 30 सेमी रखी होनी चाहिए।

ऊतक संवर्धन : प्रजाति का विभिन्न व्याधियों के उपचार में उपयोग के कारण, प्रकृति से इसके अंधाधुंध दोहन से इस प्रजाति को लुप्त प्राय श्रेणी में ला दिया गया है। इसी वजह से इस प्रजाति का ऊतक संवर्धन द्वारा बहुतायत में पौध विकास करना महत्वपूर्ण है। यद्यपि प्रजाति को बीज से बढ़ावा दिया जा सकता है परन्तु प्रकृति से अनियंत्रित दोहन ने बीजों के बनने व परिपक्व होने में कमी आयी है। इसके अलावा कायिक प्रवर्धन हेतु बड़ी संख्या में जड़ उपलब्ध कराना कठिन है इसी वजह से इसका ऊतक संवर्धन आवश्यक जान पड़ता है। कायिक भ्रूणकोशीय उपयोग से ऊतक संवर्धन के विकास के बाद यह तकनीक संवर्धन के लिये निम्न वजहों से अति महत्वपूर्ण है। (क) अधिक मात्रा में प्रादप प्रजाति के उत्पादन; (ख) समोचित लाइन्स के संरक्षण। इसकी सूखी जड़ 25–30 रु. प्रति किग्रा. बिकती है।

3.2.7 बैलाडोना (ऐट्रोपा एक्यूमिनेटा सायल) : इसे इण्डियन बैलाडोना या भारतीय बैलाडोना भी कहते हैं इसको कश्मीरी में मैट ब्रांड, फारसी और पंजाबी में बन्तामाकु, हिन्दी में साग–अंगूरा, बिहार में यबरूई, बंगाली और मराठी में गिरबूटी कहते हैं। यह पश्चिमी हिमालय, कश्मीर, चम्पा, शिमला व हिमाचल प्रदेश की पहाड़ियों में होता है। मध्य और पूर्वी यूरोप मूल का यह पौधा इटली, रूस आदि देशों में भी पैदा होता है। व्यापार के क्षेत्र में यह "बैलाडोना औषधि" कहलाता है।

उपयोग : इसकी पत्तियों तथा जड़ों को ब्रिटिश फार्माकोपिया में अधिकारिक रूप से 1932 में मान्यता प्रदान कर दी गयी थी। अब इस पौधे की पत्तियों का टिंचर तथा जड़ों को बैलाडोना प्लास्टर बनाने के लिए उपयोग में लाया जाता है। यही नहीं इसकी जड़ों से ऐट्रोपीन नामक रसायन भी प्राप्त होता है।

पत्तियों तथा अन्य भागों से प्राप्त औषधि अमाशय तथा मुंह में लार पैदा करने वाली ग्रंथियों की क्रियाओं को धीमा करती है। यह पेट को मरोड़ तथा ऐंठन जैसी अन्य तकलीफों में आराम पहुंचाती है। इसमें तीव्र एंस्टीस्पास्मोडिक गुण पाये जाते हैं। यह दमा तथा कुकर खांसी में भी

लाभकारी है। जड़ों से प्राप्त औषधि गठिया, वातशूल तथा सूजन आदि पर लेप के काम आती है। दवाई के लिए पौधों की पत्तियों में 0.3 प्रतिशत तथा जड़ों में 0.4 प्रतिशत से कम ऐल्केलॉयड नहीं होना चाहिए।

उपज : पत्तियों और तनों की ताजी हरी फसल प्रति हेक्टेयर लगभग 4500 किग्रा. प्राप्त होती है। इस ताजी हरी फसल में औसतन 50 प्रतिशत भारत पत्तियों का और 50 प्रतिशत भार तनों का रहता है। औसतन प्रतिवर्ष एक हेक्टेयर भूमि से 450 किग्रा. सूखी फसल प्राप्त होती है, जिसमें 4 प्रतिशत तना तथा 56 प्रतिशत पत्तियां रहती हैं। तनों की अपेक्षा पत्तियों में आर्द्रता कम होती है। तनों में औसतन 88 प्रतिशत तथा पत्तियों की आर्द्रता परिवर्तित होती रहती है, जो क्रमशः बाद में घटनी शुरू हो जाती है और अक्टूबर–नवम्बर तक सबसे कम हो जाती है। बैलाडोना की फसल में अगस्त से नवम्बर तक पत्तियों की फसल काटी जाती है। पहले वर्ष में औसतन पत्तियां 300 किग्रा. प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है और बाद में प्रतिवर्ष 756 किग्रा. प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है इसके अलावा 203 क्विंटल प्रति हेक्टेयर जड़ें पाप्त होती हैं। ठन्डे देशों से प्रतिवर्ष प्रति हेक्टेयर औसतन पैदावार 1–1.2 टन मिलती है।

3.2.8 एट्रोपा बैलाडोना : 'सोलेनेसी' कुल का 60 से.मी. से 150 से. मी. ऊँचा, सीधा, झाड़ीनुमा, बहुवर्षीय पौधा होता है। इस पौधे के विभिन्न भागों में उनके महत्वपूर्ण एल्केलॉयड पाये जाते हैं, जिसके कारण इस पौधे का औषधि उद्योग में बड़े पैमाने पर उपयोग किया जा रहा है। ब्रिटिश व भारतीय फार्माकोपिया में इसके टिंचर, निष्कर्ष, मरहम आदि को मान्यता प्राप्त है।

वितरण : *एट्रोपा बैलाडोना* पूरे मध्य और दक्षिणी यूरोप के सभी देशों और दक्षिणी इंग्लैण्ड के जंगलों में पाया जाता है। इंग्लैण्ड, इटली, मध्य यूरोप, यूगोस्लाविया, रूमानिया तथा अमरीका में इसकी खेती की जाती है। प्रयोग के तौर पर इसकी खेती कुमाऊँ तथा कश्मीर के राज्य कृषि फार्मों में की जाती है।

उपज : हरी पत्तियां तथा डंठल उस समय काटने चाहिए, जब पौधों में फूल आ जायें। क्योंकि ऐसे समय ही पत्तियों में एल्केलॉयड अधिक

होता है। पौधे 20–25 से.मी. भूमि से ऊंचाई पर हंसिया से काटे जाते हैं। कटाई धूप वाले दिनों में करनी चाहिए। कश्मीर में लगभग 2 से 4 क्विंटल सूखी पत्तियां ऊंचे स्थानों से तथा 5–6 क्विंटल सूखी पत्तियां नीचे स्थानों से प्राप्त होती है। इसकी अधिकतम उपज 14–15 क्विंटल तक हो सकती है। पत्तियों को कैंची (प्रूनिंग सीजर्स) की मदद से भूमि तल से 30 से.मी. ऊपर से काटा जाता है। पहले इसे 7.5 से.मी. भूमितल से ऊपर काटा जाता था। चुनाई का ढंग भी काफी उत्साहवर्धक प्रतीत हुआ है। इस रीति से पैदावार 14 क्विंटल प्रति हैक्टर तक प्राप्त करने में सफलता मिली है। जो पहले कभी प्राप्त नहीं हुई थी।

भारत में मांग : अनुमान है कि भारत में प्रतिवर्ष लगभग 80 टन सूखे पत्तों की मांग है लेकिन लगभग 250 क्विंटल पत्तियों का ही उत्पादन हैं। जड़ों से औषधि लगभग 100 क्विंटल ही प्राप्त होती है।

3.2.9 कुनैन (*सिनकोना*) : 'रूबिएसी' कुल के पौधे हैं, जिनकी संसार में लगभग 65 प्रजातियां पाई जाती हैं। ये पौधे दक्षिणी अफ्रीका के मध्य एण्डीज पहाड़ियों, कोलम्बिया, इवेडोर और पेरू में पाये जाते हैं। यह लगभग 800 मीटर की ऊंचाई तक कोस्टारिका से लेकर दक्षिण बोलीविया की सीमा तक मिलता है।

भारत में सिनकोना की निम्नलिखित प्रजातियां हैं–

1. *सिनकोना ऑफिसिनेसिल*
2. *सिनकोना कैलीसीया*
3. *सिनकोना रोबस्टा*
4. *सिनकोना सेक्सीरूब्रा*
5. *सिनकोना लेजरियाना*
6. *सिनकोना माइक्रैन्था*
7. *सिनकोना लैन्सीफोलियम*
8. *सिनकोना कारडीफोलिया*
9. *सिनकोना ट्रियना*
10. *सिनकोना पैलीडिएना*
11. *सिनकोना जोसेफिएना*
12. *सिनकोना फैलसोपेरा*

सिनकोना की उपरोक्त प्रजातियों में से निम्नलिखित 5 प्रजातियों का विशेष महत्व है।

(क) *सिनकोना सेक्सीरूब्रा* : यह 1300 से लेकर 2000 मीटर ऊँचाई में दक्षिणी भारत की पहाड़ियों में मुंगापो (बंगाल) में होता है। इसकी छाल लाल होती हैं। इस पौधे में कोडीनीन व सिनकोनीन रसायन कुनैन से

अधिक होते हैं।

(ख) *सिनकोना औफसिनेलिस* : इस पौधे को 600 से 2000 मीटर तक की ऊँचाई तक नीलगिरी की पहाड़ियों में लगाया जाता है। यह सिक्किम की पहाड़ियों में भी हो जाता है। इसमें कुनैन की मात्रा अधिक कत्थई व हल्का पीला रंग लिए होती है।

(ग) *सिनकोना कैलीसीया* : इसके पौधे नीलगिरी में 500 से लेकर 1000 मीटर की ऊँचाई तक होते हैं। 1000 ग्राम छाल से 60 ग्राम रसायन मिलते हैं जिसमें लगभग 30 ग्राम कुनैन होती है।

(घ) *सिनकोना लेजरियाना* : इसके पौधे 6–7 मीटर ऊँचे व 470 से 1600 मीटर की ऊँचाई तक भली प्रकार उगते हैं। सबसे अधिक ऊँचाई 1000 से 15000 मीटर तक हो सकती है। इसकी छाल का रंग पीला होता है। छाल में 14 प्रतिशत कुनैन होता है।

(ङ) *सिनकोना* : यह पौधा बंगाल में पाया जाता है। दार्जिलिंग की पहाड़ियों में 1500 मीटर तक में उगता है। इसमें 14–19 प्रतिशत तक कुनैन पायी जाती है।

कुनैन, सिनकोना के पौधे की सूखी छाल व जड़ों से प्राप्त की जाती है। सिनकोना की खेती काफी लाभदायक है। भारत में इसकी खेती बढ़ाने की नितांत आवश्यकता है। इससे कमाई की जा सकती है। भारत ने 1997–98 में 10.56 टन विदेशों में निर्यात करके 32.213 लाख रु. कमाया।

❖❖❖

लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. औषधीय कार्यों में कुटकी का कौन सा भाग प्रयुक्त होता है?
2. अतिविषा में किस माह में पुष्प एवं फल आते हैं?
3. चिरायता का वनस्पतिक नाम क्या है?
4. एंजेलिका ग्लौका किस प्रकार का पौधा है?
5. दारूहल्दी का वनस्पतिक नाम क्या है?

खाली स्थान भरो :

1. *आरनेबिया बेन्थमाई* आयुर्वेदिक औषधि .....का एक मुख्य घटक है।
2. *हिडिक्यम स्पिकेटम* एक वर्षीय.....पादप है।
3. वत्सनाभ.....वाला पौधा है।
4. केसर का उपयोग .....में ज्यादा होता है।
5. चिरायता जिसे.....भी कहा जाता है।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न :

निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए–

1. कुटकी 2. दारूहल्दी 3. जटामांसी
4. कूठ
5. वत्सनाभ 6. कुंकुम 7. अतिविषा
8. *आरनेबिया बैन्थमाई*
9. *हिडिक्यम स्पिकेटम* 10. *ससुरिया ओववेलेटा*

❖❖

इकाई – 4

4.1 भारत में खेती के लिए उपयुक्त कुछ प्रमुख संगंधीय पौधे

4.1.1 जापानी पोदीना

4.1.2 आर.आर.एल.सी.एन.–5

4.1.3 पामारोजा अथवा रेशा घास

4.1.4 सिट्रोनेला

4.1.5 गुलाब

4.1.6 खस

4.1.7 पचौली

4.1.8 जिरेनियम

4.2 औषधीय खेती के प्रोत्साहन हेतु देश की शीर्षस्थ संस्था राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड, नई दिल्ली

4.3 सुगंधीय पौधों की खेती तथा उच्च तकनीकी वाली बागवानी फसलों हेतु किसानों का सहयोगी संस्थान राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड

4.4 ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित होने वाली औषधीय एवं सुगंधीय पौधों के प्रसंस्करण की इकाइयों के लिए मददगार खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्ड

4.5 जेट्रोफा तथा नीम आदि जैसे वृक्षमूल तिलहनों के प्रोत्साहन हेतु राष्ट्रीय तिलहन एवं वानस्पतिक तेल विकास बोर्ड (नोवोड) की अनुदान योजना

इकाई– 4

4.1 भारत में खेती के लिए उपयुक्त कुछ प्रमुख संगंधीय पौधे

4.1.1 जापानी पोदीना (*Mentha arvensis*) : जापानी पोदीना, मिन्ट अथवा मेन्था समूह का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सदस्य है जिसकी हमारे देश में काफी बड़े क्षेत्र में खेती हो रही है। वानस्पतिक भाषा में मेन्था आरवेन्सिस के नाम से जाने जाने वाले इस पौधे के पत्तों से आसवन विधि से तेल प्राप्त किया जाता है। इस तेल का प्रमुख घटक मेन्थॉल होता है जो अनेकों औषधीय एवं सुगंधीय उत्पादों के निर्माण में प्रयुक्त होता है। जिन प्रमुख उत्पादों के निर्माण में जापानी पोदीने के तेल अथवा इससे बनाए जाने वाले अन्य उत्पादों जैसे मेन्था फ्लेक्स, मेन्था क्रिस्टल आदि का उपयोग होता है, वे हैं– विभिन्न टूथपेस्ट, आफ्टर शेव लोशन, हेयर शैम्पू, पान मसाले, कन्फैक्शनरी, चुइंगम तथा बबलबग, सर्दी खांसी की दवाएं तथा बाम आदि। उपरोक्त के अतिरिक्त इसका उपयोग खुजली की दवाओं, कण्डोम्स, तथा सिगरेट आदि में भी किया जाता है। शोध कार्यों में यह भी पाया गया है कि प्राथमिक अवस्था की एड्स को नियन्त्रित करने में भी यह प्रभावी हो सकता है। इनके अतिरिक्त और भी कई उत्पादों के निर्माण में इसका उपयोग हो रहा है जिसके कारण आज इसकी सम्पूर्ण विश्व में मांग हो रही है। वर्तमान में भारत से काफी मात्रा में इसका निर्यात भी किया जा रहा है। विश्व बाजार में जापानी पोदीने के उत्पादन की दृष्टि से भारत के अन्य प्रतिद्वंदी देश हैं– चीन, ब्राजील, पेरुग्वे, जापान, अर्जेन्टीना तथा अंगोला। जापानी पोदीने के तेल में मुख्यतया 65 से 75 प्रतिशत तक मेन्थॉल, 8 से 12 प्रतिशत तक मेन्थाल तथा 4 से 5 प्रतिशत तक मिथाईल एसीटेट पाया जाता है। व्यापारिक गत में जापानी पोदीने को

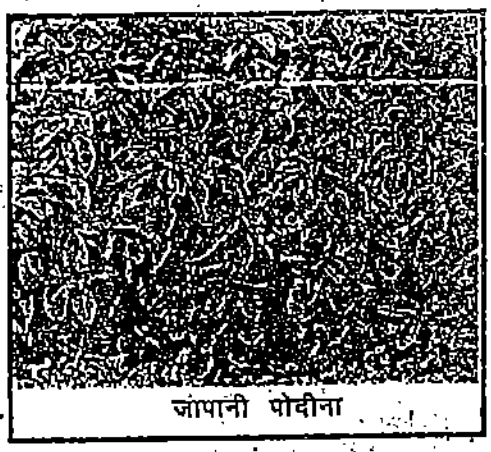

जापानी पोदीना

ही मेन्था अथवा मिन्ट के नाम से जाना जाता है परन्तु तकनीकी रूप से मेन्था शब्द पोदीनें के एक समूह का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें पोदीने की कई प्रजातियां सम्मिलित हैं जैसे – जापानी पोदीना *(Mentha arvensis)* पिपर मिन्ट *(Mentha piperita)* बर्गामोट मिन्ट *(Mentha citrata)* स्पीयर मिन्ट *(Mentha spicata)* स्कॉच स्पीयर मिन्ट *(Mentha gracilis)* आदि। इस प्रकार मेन्था के समूह में कई प्रजातियां सम्मिलित हैं जिनमें से एक प्रजाति जापानी पोदीना भी है। वर्तमान में विश्व भर में जापानी पोदीना के उत्पादन के क्षेत्र में भारत दूसरे स्थान पर (प्रथम स्थान चीन को प्राप्त है) जबकि पिपरमिन्ट तथा स्पीयरमिन्ट के उत्पादन में संयुक्त राज्य अमेरिका को प्रथम स्थान प्राप्त है। वर्ष भर में जापानी पोदीने की तीन कटाइयां ली जाएं तथा तेल की बिक्री दर 300 रु. प्रति कि.ग्रा. मानी जाए तो किसान को एक एकड़ से लगभग 30000 रु. की प्राप्तियां होती हैं।

4.1.2 आर.आर.एल.सी.एन–5 *(Cymbopogon nardus)* : गुलाबों की खुशबू तथा गुलाबों की सुगंध वाले उत्पाद सदियों से मानव मात्र को भाते रहे हैं। असली गुलाबों तथा इनके उत्पादों के अत्यधिक महंगा हो जाने के कारण कालान्तर में इनका स्थान विभिन्न वैकल्पिक उत्पादों ने ले लिया। इसी वस्तुस्थिति के परिणाम स्वरूप "गुलाबों की खुशबू" के स्त्रोत के रूप में जिरेनियॉल तथा जिरेनियॉल एसीटेट प्राप्ति के विभिन्न प्राकृतिक स्त्रोतों जेसे पामारोजा तथा जामारोजा घास के तेल का उपयोग बढ़ा तथा वर्तमान में भी गुलाबों की खुशबू के मुख्य स्त्रोत के रूप में इन्हीं घासों से निकाला जाने वाला तेल प्रयुक्त किया जा रहा है।

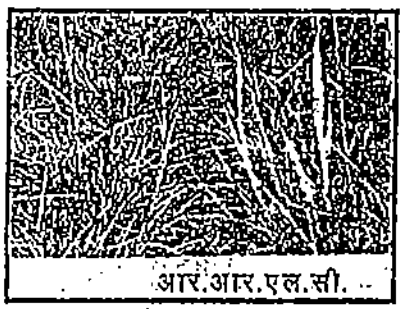
आर.आर.एल.सी.

सी.एन.–5 प्रजाति का विकास मूलतः हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जिले के जंगलों में पाई जाने वाली सिम्पोपोगान कुल की एक सुगंधीय घास में चयन तथा सुधार के आधार पर किया गया है। इस प्रजाति को जम्मू की जलवायु के अनुसार ढालकर तथा इसमें आवश्यक सुधार करके इसे सी.एन.–5 का नाम दिया गया है। वस्तुतः सी.एन.–5 एक बहुवर्षीय घास है जिसमें काफी घने

कूंचे (क्लम्प) बनते हैं तथा जिसमें काफी अधिक टिलरिंग होती है। पूर्णतया विकसित हो जाने पर यह घास 4 से 6 फीट की ऊँचाई पाप्त कर लेती है। इसके पत्ते हरे तथा किनारों पर कुछ–कुछ नुकीले अथवा धारदार होते हैं। वर्ष में दो बार (मार्च–अप्रैल तथा सितम्बर–अक्टूबर माह में) इस पर फूल आते हैं परन्तु इनमें बीज नहीं बनते। सी.एन.–5 का मुख्य घटक ज़िरेनियॉल होता है। बिजाई के प्रथम वर्ष में इसके तेल में 65 से 70 प्रतिशत तक मुक्त जिरेनियॉल तथा 10 से 20 प्रतिशत जिरेनियाल एसिटेट पाया गया है। द्वितीय वर्ष की फसल में जिरेनियॉल की मात्रा अपेक्षाकृत बढ़ जाती है। जिरेनियॉल तथा जिरेनियॉल एसिटेट के अतिरिक्त इसके तेल में 0.1 प्रतिशत से 0.7 प्रतिशत तक सिट्रल भी पाया जाता है। इसमें सिट्रल की अपेक्षाकृत कम उपस्थिति होने के कारण इसे जिरेनियॉल तथा जिरेनियॉल एसिटेट प्राप्त करने के अन्य स्त्रोतों (जेसे जामारोजा आदि) की अपेक्षा ज्यादा पसन्द किया जाता है। सी.एन–5 का प्रमुख उपयोगी भाग इससे प्राप्त किया जाने वाला तेल होता है। इसका तेल मुख्यतया साबुनों, परफ्यूमरी तथा सौन्दर्य प्रसाधन उद्योग में संबंधित उत्पाद को गुलाबों जैसी खुश्बू प्रदान करने हेतु किया जाता है। इसी प्रकार जहां भी किन्हीं खाद्य पदार्थों अथवा औद्योगिक उत्पादों का गुलाब का (फ्लेवर प्रदान करना हो वहां इसका उपयोग किया जा सकता है। संक्षेप में, सुगंध उद्योग, फ्लेवर उद्योग तथा उन उद्योगों में जहां जिरेनियॉल का उपयोग होता है, वहां सी.एन.–5 के तेल का उपयोग किया जा सकता है। जैसा कि उपरोक्तानुसार वर्णित है, अभी तक जिरेनियॉल प्राप्त करने हेतु प्रयुक्त किए जा रहे स्रोतों पामारोजा तथा जामारोजा की अपनी–अपनी सीमाएं होने के कारण जिरेनियॉल प्राप्ति के एक उपयुक्त स्रोत की आवश्यकता महसूस की जा रही थी जिसका उपयुक्त हल सी.एन.–5 हो सकता है। सुगंध उद्योग में जिरेनियॉल की अत्यधिक मांग होने तथा वर्तमान स्रोत अपर्याप्त होने के कारण सी.एन.–5 का कृषिकरण काफी अधिक लाभकारी हो सकता है। विशेष रूप से सी.एन.–5 के अत्यधिक कठोर प्रकृति की घास होने तथा कम पानी एवं सूखाग्रस्त क्षेत्रों में भी अच्छे परिणाम देने के कारनण सी.एन.–5 की खेती को बड़े स्तर पर अपनाया जा सकता है। ज़िरेनियॉल के पर्याप्त बाज़ार तथा निरन्तर बढ़ती

जा रही मांग के कारण सी.एन.–5 की खेती किसानों के लिए काफी लाभकारी सिद्ध हो सकती है। प्रथम वर्ष में 2–3 कटाइयों में लगभग 70–80 कि.ग्रा. तथा आगामी कटाइयों में 100 से 125 कि.ग्रा. तक तेल प्रति एकड़ प्राप्त किया जा सकता है। यदि तेल की बिक्री दर 350 रु. प्रति कि.ग्रा. मानी जाए तो प्रथम वर्ष में सारे खर्च निकाल कर लगभग 13000 रु. तथा आगामी वर्षों में 25000 से 35000 रु. प्रति एकड़ तक का लाभ प्राप्त किया जा सकता है। यथा संभव तेल का संग्रहण एल्यूमिनियम कन्टेनर्स में किया जाना चाहिए।

4.1.3 पामारोजा अथवा रोशा घास (*Cymbopogon martini*) : पामारोजा अथवा रेशा घास जिसे तिखाड़ी के नाम से भी जाना जाता है, मूलतः एक जंगली घास है जो कभी मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र तथा उड़ीसा के जंगलों में बहुतायत में पाया जाता था। इस घास के पत्तों को आसवित करने से एक तेल प्राप्त होता है जिसका मुख्य घटक जिरेनियॉल होता है तथा जिसमें गुलाब (रोज़) के जैसी खुशबू आती है। संभावतया इसीलिए इसे रेशा घास कहा जाता है। कुछ वर्षों पूर्व तक यह जंगलों में प्रचुर मात्रा में मिलता था तथा कई स्थानों पर वनवासियों एवं वन विभाग द्वारा इसके आसवन हेतु भट्टियां लगाई जाती थीं, परन्तु वर्तमान में इसकी उपलब्धता काफी कम हो गई है। सौभाग्यवश भारतीय पामारोज़ा के तेल को विदेशों में काफी सराहना प्राप्त हुई है तथा अंतरराष्ट्रीय बाजारों में इसकी काफी अधिक मांग होने के कारण इसके कृषिकरण की तरफ किसानों तथा व्यवसाइयों का ध्यान गया है।

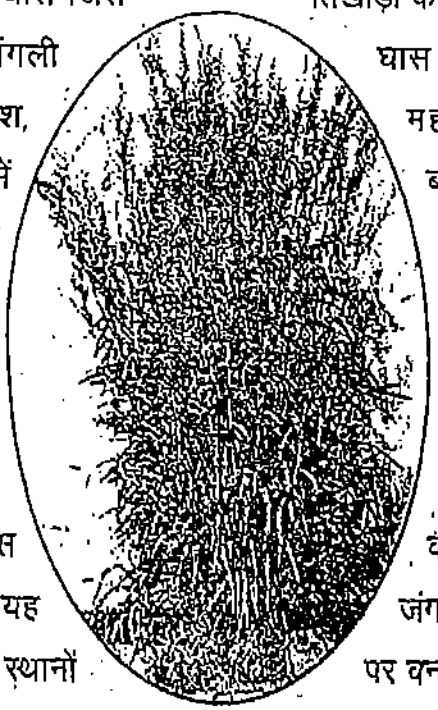

पामारोजा, 'ग्रेमिनेसी' कुल की एक बहुवर्षीय घास होती है जिसका वानस्पतिक नाम *सिम्पबोपोगान मार्टिन* है। व्यवहार में इसकी दो प्रमुख जातियां मानी जाती हैंमोतिया तथा सोफ़िया। हालांकि देखने में दोनों एक

जैसी ही दिखती हैं परन्तु जहां मोतिया प्रजाति कुछ दूर–दूर पर फैली हुई होती है, वहीं सोफिया समूहबद्ध होती है। इनके पत्तों के रंग तथा खुशबू में भी अन्तर होता है इसी प्रकार इनसे उत्पादित होने वाले तेलों के रासायनिक घटकों में भी में भी अंतर पाया जाता है। जहां मोतिया प्रजाति में 85 से 92 प्रतिशत तक जिरेनियॉल पाया जाता है वहीं सोफिया प्रजाति में इसकी मात्रा 60 से 70 प्रतिशत तक होती है। फलतः सोफिया प्रजाति की बजाए मोतिया प्रजाति को ज्यादा उच्च माना जाता है। वैसे व्यापार में जहां मोतिया प्रजाति से निकाले जाने वाले तेल को पामारोजा ऑयल अथवा रूशा आयल अथवा ईस्ट इंडियन जिरेनियम ऑयल अथवा इलिचपुर रोशा कहा जाता है, वहीं सोफिया प्रजाति से निकाले जाने वाले तेल को "जिंजरग्रास ऑयल" कहा जाता है। जंगलों में यूं तो ये दोनों प्रजातियां पाई जाती हैं परन्तु सोफिया प्रजाति के ज्यादा प्रभावी होने के कारण यह मोतिया प्रजाति पर पूर्णतया हावी हो गई है। इस स्थिति के फलस्वरूप वर्तमान में अधिकांशतः जंगलों में सोफिया प्रजाति ही उपलब्ध रह गई है जबकि गुणवत्ता में ज्यादा अच्छी होने के कारण राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ज्यादा मांग मोतिया प्रजाति से प्राप्त होने वाले तेल की ही है। फलतः पामारोजा की मोतिया प्रजाति के कृषिकरण को बढ़ावा देना समय की मांग बन गई है। पामारोज़ा की मोतिया प्रजाति के तेल में पाए जाने वाले मुख्य रासायनिक तत्व हैं– जिरेनियॉल (75 से 85 प्रतिशत), जिरेनियाल एसीटेट (6 से 12 प्रतिशत), सिट्रोनिलॉल (5 से 6 प्रतिशत लिनालूल (2 से 4 प्रतिशत), तथा सिट्रल। इनके अतिरिक्त इसके तेल में कई सूक्ष्म अवयव जैसे अल्फा पाइनीन, बीटा पाइनीन, गामा पाइनीन तथा एलीमीन आदि भी पाए जाते हैं। औषधीय एवं व्यवसायिक दृष्टि से पामारोजा का महत्व इससे प्राप्त होने वाले तेल के कारण होता है। इसके तेल में गुलाब जैसी सुगंध आने के कारण इसकी व्यवसायिक उपयोगिता काफी अधिक है तथा विभिन्न परफ्यूमरी उत्पादों, तम्बाकू को फ्लेवर प्रदान करने तथा सुगंधीय साबुनों के निर्माण में इसका काफी उपयोग होता है। उच्च ग्रेड के जिरेनियाल के निर्माण का भी यह प्राकृतिक स्त्रोत है जिसका उपयोग उच्च गुणवत्ता के परफ्यूम्स बनाने के साथ–साथ विभिन्न एरोमा कैमिकल्स के निर्माण हेतु प्रारंभिक मेटेरियल के रूप में किया जाता है। सौन्दर्य प्रसाधनों तथा सुगंधीय पदार्थों के निर्माण के साथ–साथ पामारोजा

के तेल का उपयोग कई औषधीय कार्यों हेतु भी किया जाता है। पामारोजा के तेल की तासीर गर्म होने के कारण परम्परागत चिकित्सा तथा घरेलू चिकित्सा में इसका उपयोग जोड़ों के दर्द के निवारण हेतु किया जाता है। इसके साथ–साथ इसका उपोग कफ वात विकारों, आम वात, चर्मरोगों, हृदय की कमजोरी, रक्तविकारों, श्वास संबंधी विकारों, मूत्राघात तथा ज्वर की स्थिति में भी किया जाता है। गुलाब के तेल के प्रतिनिधित्व द्रव्य के रूप में भी इसका उपयोग किया जाता है। पामारोजा की फसल से प्रतिवर्ष प्रति एकड़ औसतन 30 से 50 कि.ग्रा. तक तेल की प्राप्ति हो सकती है। इस तेल की बिक्री दर मुख्यतया इसमें उपस्थित मुख्य घटकों (जिरेनियाल) के प्रतिशत तथा तेल की गुणवत्ता पर निर्भर करती है जोकि प्रायः 400 रु. प्रति कि.ग्रा. से लेकर 1000 रु. प्रति कि.ग्रा. तक हो सकती है। इस तेल की औसतन बिक्री दर प्रायः 500 रु. प्रति कि.ग्रा. रहती है। इस प्रकार यदि प्रतिवर्ष प्रति एकड़ औसतन 30 से 50 कि.ग्रा. उपज का अनुमान लगाया जाए तो पामारोजा की सिंचित फसल से प्रतिएकड़ 19000 रु. तक का शुद्ध लाभ किसान को प्रतिवर्ष (दूसरे वर्ष से) हो सकता है।

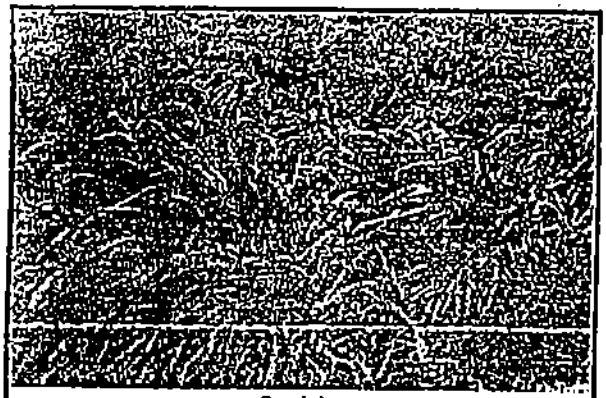
सिट्रोनेला

4.1.4 सिट्रोनेला (*Cymbopogon winterianus* Jowitt) : सिट्रोनेला पोएसी कुल की 5 से 6 फीट तक ऊंची सुगंधीय घास होती है। जिसकें पत्तों को आसवित करके एक सुगंधीय तेल प्राप्त किया जाता है। यह तेल इनकों संगुधीय उत्पादों, साबुनों, एन्टीसेप्टिक क्रीमों, मच्छर भगाने वाले उत्पादों तथा दुर्गंधनाशक उत्पादों के निर्माण में प्रयुक्त होता है जिसके कारण इसकी विश्व बाजार में काफी अच्छी मांग है। जावा सिट्रोनेला का प्रमुख उपयोगी तत्व इसके पत्तों तथा पौधे से प्राप्त होने वाला सुगंधीय तेल होता है। इस तेल का मुख्य घटक सिट्रोनीलाल तथा जिरेनियाल होता है जो काफी अधिक उत्पादों के निर्माण हेतु प्रयुक्त होता है। वर्तमान में जिन प्रमुख उत्पादों

के निर्माण में सिट्रोनेला तेल तथा इससे प्राप्त होने वाले अवयव प्रयुक्त होते हैं वे – एन्टीसेप्टिक क्रीमें, मच्छर भगाने वाले उत्पाद तथा क्रीमें, दुर्गंधनाशक उत्पाद, साबुन, सौन्दर्य प्रसाधन परफ्यूम्स आदि। इनके साथ–साथ यह विभिन्न सुगंधीय रसायनों जैसे जिरेनियाल तथा हाईड्राक्सी सिट्रोनेलॉल की प्राप्ति का भी स्त्रोत है। वर्तमान में इन उत्पादों के निर्माण हेतु जावा सिट्रोनेला ऑयल की विश्व भर में काफी अधिक मांग हैं। प्रथम वर्ष में औसतन 60 कि.ग्रा. तेल का उत्पादन होना माना जाए तथा आगामी वर्षों में 100 किग्रा. तेल का अनुमान लगाया जाए तो प्रथम वर्ष में प्रति एकड़ लगभग 18000 रु. तथा आगामी वर्षों में 30000 रु. प्रति एकड़ की प्राप्तियां हो सकती हैं। इनमें से यदि फसल पर होने वाले व्यय को कम कर दिया जाए तो प्रथम वर्ष में 5000 रु. तथा आगामी वर्षों में 20–22 हजार रु. प्रतिएकड़ का शुद्ध लाभ इस फसल से कमाया जा सकता है। सिट्रोनेला एक काफी लाभकारी सुगंधीय घास है जिसकी खेती भारतवर्ष के विभिन्न भागों में सफलतापूर्वक की जा सकती है। क्योंकि वर्तमान में इसका देशीय एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजार काफी अच्छा है, जोकि निरन्तर बढ़ता जा रहा है, अतः काफ़ी समय तक इसके विपणन में किसी प्रकार की परेशानी आने की संभावना नहीं है। प्रायः इस फसल पर ज्यादा बीमारियां भी नहीं आतीं तथा इसे पशु पक्षियों आदि से भी किसी प्रकार का नुकसान नहीं होता। इसके अतिरिक्त इसे छोटे स्तर पर प्रारंभ करके फसल पर होने वाले प्रारंभिक खर्चों को कम भी किया जा सकता है। अतः जिन किसानों के पास सिंचाई के साधनों की पर्याप्त व्यवस्था हो उनके लिए सिट्रोनेला काफी उपयोगी एवं लाभकारी फसल सिद्ध हो सकती है।

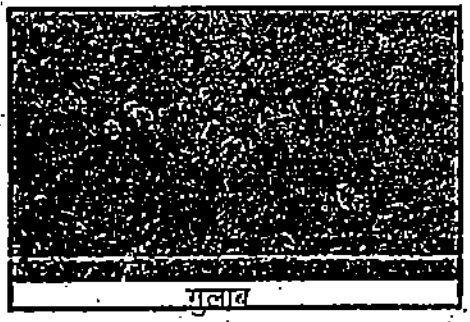
गुलाब

4.1.5 गुलाब (*Rosa centifolia/Rosa damascena*) : गुलाब तथा इससे बनाए जाने वाले विभिन्न उत्पादों जैसे गुलाब जल एवं गुलाब के तेल के निर्माण से संबंधित विवरण हमारे प्राचीनतम ग्रन्थों में भी बहुतायत में मिलते हैं परन्तु एक महत्वपूर्ण व्यवसायिक पुष्प के रूप में जितनी महत्ता गुलाब को वर्तमान समय में मिली है उतनी शायद पहले कम ही मिली थी।

अनेकों शोधालयों में साथ–साथ खुशी एवं गमी के मौकों पर समान रूप से प्रयुक्त किए जाने, विभिन्न सौन्दर्य प्रसाधनों के निर्माण के साथ–साथ औषधियों में भी प्रयुक्त किए जाने तथा मुख शुद्धि प्रयुक्त किए जाने वाले द्रव्यों के निर्माण के साथ–साथ एरोमाथेरेपी के महत्वपूर्ण घटक के रूप में प्रयुक्त किए जाने के कारण आज गुलाब राष्ट्रीय पुष्प का दर्जा न रखने के बावजूद भारतीय जनमानस में एक श्रेष्ठ पुष्प का स्थान रखता है। वर्तमान में व्यवसायिक दृष्टि से न केवल गुलाब की खेती को एक महत्वपूर्ण खेती के रूप में माना जा रहा है बल्कि इससे बनाए जाने वाले विभिन्न उत्पादों, जैसे गुलाब तेल, गुलाब इत्र, गुलाब जल, गुलाब पत्री, गुलकंद आदि की मांग भी निरंतर बढ़ती जा रही है। दुर्भाग्यवशी क्षमताओं एवं संभावनाओं की तुलना में हमारे देश में गुलाब की खेती एक संतोषजनक रूप नहीं ले पाई है। जिसके लिए किसानों द्वारा उचित मार्गदर्शन तथा कृषि क्रियाएं अपनाए जाने की आवश्यकता है।

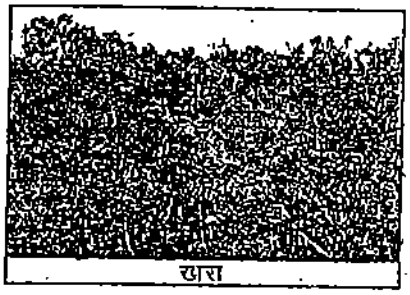
खस

औषधीय दृष्टि से भारतवर्ष में गुलाब तथा दूसरे उत्पादों का विवरण यूं तो आयुर्वेद के समय से मिलता है परन्तु इसके तेल के उत्पादन का श्रेय मुगल बादशाह जहांगीर की बेगम नूरजहां को जाता है जिसने न केवल इस फूल को सर्वश्रेष्ठ रुतबा दिलवाया बल्कि गुलाब तेल के निर्माण को भी लोकप्रिय बनाया। गुलाब का प्रमुख उत्पादन उसके फूल ही होते हैं जिनसे आगे तेल अथवा गुलाब जल तथा अन्य उत्पाद बनाए जाते हैं। जहां एक दमिश्क गुलाब का प्रश्न है तो इसमें एक एकड़ में तीसरे वर्ष से औसतन 15 से 16 क्विंटल फूलों का उत्पादन हो जाता है जिसमें से लगभग 0.025 से 0.030 प्रतिशत तक तेल प्राप्त होता है। इस प्रकार एक एकड़ में प्राप्त फूलों से लगभग 300 से 400 ग्राम तेल उत्पादित होता है। इसके साथ–साथ सर्वोत्तम गुणवत्ता का लगभग 700 से 800 लीटर तथा मध्यम गुणवत्ता का लगभग 1500–1600 लीटर गुलाब जल भी प्राप्त होता है। यदि गुलाब तेल तथा गुलाब जल के उत्पादन के आधार पर देखा जाए तो इस फसल से तीसरे वर्ष से लगभग 60 से 70 हजार रु. प्रतिवर्ष की प्राप्तियां होंगी जोकि आगामी 15–20 वर्ष तक निरन्तर मिलती रहेंगी। तेल निकाल लेने के

उपरान्त जो गुलाब की पत्तियां बची रहेंगी उनको सुखा कर तथा पीसकर उन्हें अगरबत्तियों के निर्माण में भी काम में लाया जा सकता है जिससे प्राप्तियों की मात्रा और अधिक बढ़ाई जा सकती है। इस प्रकार गुलाब की फसल से किसान को प्रतिवर्ष औसतन 50000 रु. का शुद्ध लाभ प्राप्त हो सकता है।

पचौली

4.1.6 खस (*Vetiveria zizanioides*) : खस का उपयोग मुख्यतया तेल की प्राप्ति हेतु किया जाता है जोकि इस पौधे की जड़ों में विद्यमान होता है। वर्तमान में विश्व की कुल खस के तेल की 80 प्रतिशत मांग की पूर्ति इंडोनेशिया तथा हैती द्वारा की जाती है। वैसे इन देशों के साथ–साथ ग्वाटेमाला, भारत रीयूनियन द्वीप समूह, चीन तथा ब्राजील भी इसके अन्य उत्पादक देश हैं एक अनुमान के अनुसार विश्व भर में प्रतिवर्ष लगभग 300 टन खस तेल का उत्पादन होता है। जिसमें से भारत की भागीदारी मात्र 20 टन प्रतिवर्ष की है। खस के पौधे की जड़ों में से निकाला जाने वाला तेल ही इसका प्रमुख उपयोगी उत्पाद होता है। खस के तैल में पाया जाने वाला प्रमुख घटक है वेटीवरॉल जोकि इसके तेल में 55 से 75 प्रतिशत तक पाया जाताहै। वस्तुतः खस का तेल भारतवर्ष की प्रचीनतम सुबंधियों में से एक है जिसका उपयोग स्वाद एवं संगंध उद्योग दोनों में किया जाता है। मुख्यतया इसका उपयोग ज़र्दा निर्माण, संगंधित सुपारी निर्माण, पान मसालों के निर्माण, परफ्यूमरी तथा शर्बत आदि में किया जाता है। खस का तेल प्राचीन समय से विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों में रोगोपचार हेतु भी किया जाता रहा है। खाद्य पदार्थों के माध्यम से शरीर में जाने वाला खस का तेल पाचन इन्द्रियों को सुचारू रूप से चलाने में सहायक होता है। खस की जड़ों से तेल निष्कासित कर लिए जाने के उपरान्त जो घास बचती है उससे खिड़कियों एवं कूलर्स के पर्दे बनाए जाते हैं। गर्मियों में इन पर पानी टिके रहने से कमरे का तापमान तो ठंडा रहता ही है, इससे वातावरण में भी खुशबू फैल जाती है जो ताज़गी भी प्रदान

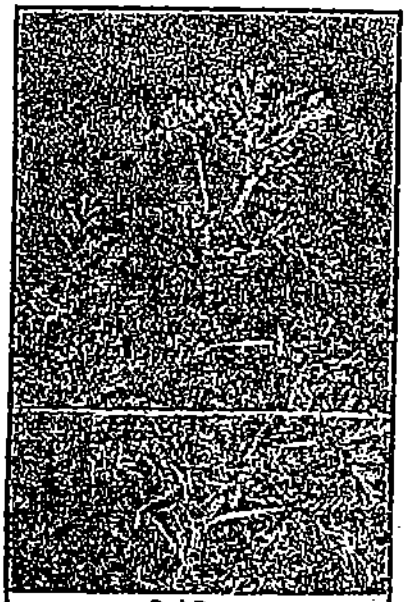
जिरेनियम

करती है। हस्तकला तथा सृजनात्मकता का उपयोग करके इस घास से कई प्रकार की वस्तुएं जैसे गणेशजी की प्रतिमा, पेन स्टैण्ड, चटाइयां आदि भी बनाई जा रही हैं। खस का तेल निकाल लिए जाने के उपरान्त जो पानी बचता है उसमें चाशनी का मिश्रण करके खस की खुशबू वाला शर्बत भी बनाया जा सकता है जोकि जायके एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से भी लाभप्रद होता है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि खस एक काफी उपयोगी वनस्पति है जिसकी जड़ों के साथ–साथ जड़ों के अवशेष भी काफी उपयोगी होते हैं। प्रति एकड़ औसतन 6 कि.ग्रा. तेल प्राप्त होता है तथा तेल की बिक्री दर 7000 रु. प्रति कि.ग्रा. हो तो किसान को एक एकड़ से लगभग 42000 रु. की प्राप्तियां होंगी। इसमें से फसल पर होने वाला समस्त खर्चों को घटा देने पर किसान को इस फसल से प्रति एकड़ 23700 रु. का शुद्ध लाभ प्राप्त हो सकता है। खस एक काफी उपयोगी सुगंधीय फसल है जिसके तेल की मांग निरन्तर बढ़ते ही जाना है। तेल की प्राप्ति के साथ–साथ इसकी जड़ों के कूलर्स, खिड़कियों तथा कारों आदि हेतु चटाई निर्माण के कार्य में आने के कारण यह फसल "आम के आम तथा गुठलियों के दाम" वाली कहावत को चरितार्थ करती है। आर्थिक लाभ के साथ–साथ इस फसल की एक अन्य प्रमुख विशेषता यह भी है कि यह पूर्णतया ऊसर भूमियों में भी लगाई जा सकती है तथा जलमग्न मृदाओं में भी इस प्रकार बेकार पड़ी हुई समस्याग्रस्त जमीनों में खस की खेती करके किसान स्वरोजगार का काफी अच्छा साधन प्राप्त कर सकते हैं।

4.1.7 पचौली (*Pogostemon patchouli*) : पचोली तथा पचौली जिसका वनस्पतिक नाम *पोगोस्टेमॉन पचोली* पैलट अथवा *पॉगोस्टेमॉन कैबलिन* (ब्लैको) बैंथ है, लैबिएटी कुल का पौधा है जिसकी ऊंचाई लगभग डेढ़ दो फीट तक होती है। इसकी सूखी पत्तियों से एक सुगंधीय तेल निकाला जाता है जो अन्य सुगंधों में मिलाने पर उन्हें स्थायित्व प्रदान करता

है। पचौली के तेल में मुख्य रूप से पचौली एल्कोहल, एल्फा पचोलीन तथा बीटा पचोलीन नामक घटक पाए जाते हैं। इनके साथ–साथ इसमें पचोली ऑक्साइड, पोगोस्टोल एवं बलनीसीन भी पाए जाते हैं। पचौलोल, जोकि इसके तेल का मुख्य घटक है इसके तेल में 35 से 40 प्रतिशत तक पाया जाताहै। अपने आप में एक इत्र होने के साथ–साथ इसकी एक प्रमुख उपयोगिता यह भी है कि जब किसी इन्य इत्र में पचौली का तेल मिला दिया जाता है तो उस दूसरे तेल की आयु स्वतः ही बढ़ जाती है तथा उसकी खुशबू स्थिर हो जाती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न पेय पदार्थों में सुवास देने, खाद्य पदार्थों को सुवासित करने तथा दुग्ध एवं बेकरी उद्योग में भी इसका काफी उपयोग होता है। एक अनुमान के अनुसार विश्व भर में प्रतिवर्ष लगभग 1000 टन पचौली के तेल की खपत होती है जिसमें से भारतीय उद्योग की मांग लगभग 70 से 80 टन है। भारतीय उद्योग की मांग की पूर्ति हेतु वर्तमान में यह तेल विदेशों से आयात किया जा रहा है। इस वस्तु स्थिति को देखते हुए भारतवर्ष में इस पौधे की खेती तथा इसके तेल उत्पादन को बढ़ावा दिए जाने की नितान्त आवश्यकता है। एक औसतन फसल से तीन कटाइयों में प्रति एकड़ लगभग 3000 से 3500 कि.ग्रा. गीली पत्तियां प्राप्त होती हैं जोकि सुखाने पर लगभग 600 कि.ग्रा. से 700 कि.ग्रा. तक रह जाती हैं। प्रायः तेल की मात्रा पत्तियों की तुलना में 2.5प्रतिशत से 3.5 प्रतिशत तक रहती है। इस प्रकार एक एकड़ की फसल से वर्ष भर में तीन कटाइयों में लगभग 15 से 20 कि.ग्रा. (औसतन 18 कि.ग्रा.) तक तेल प्राप्त हो जाता है। यदि तीन वर्ष की अवध्यिा के आधार पर गणना की जाए तो इस फसल से तीन वर्षों में किसान को प्रति एकड़ 46000 का शुद्ध लाभ प्राप्त हो सकता है।

4.1.8 जिरेनियम (*Pelargonium graveolens*) : जिरेनियम अथवा रोज़ जिरेनियम, जिरेनिएसी कुल का डेढ़ से दो फीट ऊंचा 40–50 शाखाओं वाला एक बहुवर्षीय पौधा होता है जिसकी पत्तियों को आसवित करके एक सुगंधीय तेल प्राप्त किया जाता है। इस तेल में गुलाब के जैसी खुशबू आती है। इसके तेल में प्रमुख घटक जिरेनियाल एवं सिट्रोनेलाल होते हैं जोकि इसके तेल में क्रमशः 6.45 से 18.5 तथा 20 से 35 प्रतिशत तक पाए जाते हैं। इनके अतिरिक्त इसके तेल में अल्फा–पाइनीन, बीटापाईनीन, एल्फा

टर्पीनीन, माइरसीन, एल्फा फ़िलेन्ड्रीन, लिमोनीन, जिरेनिल फारमेट, जिरेनिल बुटलेट, जिरेनिल एसिटेट, आईसोमेन्थान ट्रांस–रोजआक्साइड आदि जेसे सूक्ष्म तत्व भी पाए जाते हैं। जिरेनियम के तेल की संरचना के विवरण आगे दिए जा रहे हैं। जिरेनियम का तेल अपने आप में एक उच्च गुणवत्ता का सुगंधीय तेल होता है इसका तेल मुख्य रूप से इत्रों, साबुनों, सुगंधीय निर्माण, सौन्दर्य प्रसाधनों के निर्माण तथा विभिन्न सुगन्ध मिश्रणों के निर्माण हेतु किया जाता है। एरोमाथेरेपी में इसका उपयोग मन तथा शरीर को संतुलन प्रदान करने हेतु किया जाता है। यह एंटी–फंगल भी है तथा ऐंटी–इन्फ्लेमेटरी भी। एक अनुमान के अनुसार भारतवर्ष में इसकी वार्षिक मांग 40 से 50 टन की है जबकि हमारे यहां इसका वार्षिक उत्पाद 20 टन भी नहीं है (स्त्रोत : फफाई जर्नल, जनवरी–मार्च 2003) जिसके फलस्वरूप इसको काफी मात्रा में विदेशों से आयात किया जाता है। भारतीय सगंधीय उद्योग की मांग तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इसकी मांग को देखते हुए जिरेनियम की खेती को प्रोत्साहित करना समय की मांग है। इसके कृषिकारण को प्रोत्साहित करना न केवल देशीय सुगंध उद्योग के लिए लाभकारी होगा बल्कि इसकी खेती किसानों के लिए काफी लाभकारी है। जिरेनियम की दो कटाइयां लेने पर औसतन 15 कि.ग्रा. तेल प्राप्त हो सकता है। वर्तमान में जिरेनियम के तेल की बिक्री दर 1700 रु. से लेकर 42 रु. प्रति कि.ग्रा. तक है। यदि तेल की औसतन बिक्री दर 2500 रु. प्रति कि.ग्रा. मानी जाए तो इस फसल से किसान को (दो कटाइयों से) लगभग 37500 रु. की प्राप्तियां होती हैं। इनमें से यदि फसल पर होने वाले व्यय (लगभग 12500 रु.) को कम कर दिया जाए तो लगभग 25000 रु. का शुद्ध लाभ किसान को इस फसल से प्राप्त हो सकता है। दो कटाइयां ले लेने के उपरान्त उस खेत में कोई दूसरी फसल (जैसे प्याज, लहसुन, आलू आदि) भी बोनस फसल के रूप में ली जा सकती है जिससे अतिरिक्त लाभ हो सकता है।

❖❖❖

4.2 औषधीय खेती के प्रोत्साहन हेतु देश की शीर्षस्थ संस्था राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड, नई दिल्ली

कृषिकरण के माध्यम से गुणवत्तापूर्वक जड़ी–बूटियों के उत्पादन को प्रोत्साहित करने, जड़ी–बूटियों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भारत को एक सशक्त प्रतिस्पर्धी के रूप में प्रस्तुत करने, इस क्षेत्र में उत्पादकता तथा गुणवत्ता में सुधार लाने तथा इस क्षेत्र में उत्पादकों तथा व्यवसाइयों को संगठित करने के उद्देश्य से स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के अंतर्गत 24 नवम्बर 2000 को एक विशिष्ट संस्था की स्थापना की गई है जिसे राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड का नाम दिया गया है।

बोर्ड की स्थापना के प्रमुख उद्देश्य : जिन प्रमुख उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु बोर्ड का गठन किया गया है, वे निम्नानुसार हैं–

1. देशीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर औषधीय पौधों की मांग तथा पूर्ति से संबंधित जानकारियां एकत्रित करना।
2. विभिनन मंत्रालयों/विभागों/संगठनों/राज्यों अथवा केन्द्र शासित राज्यों को औषधीय पौधों के विकास से संबंधित योजनाओं तथा कार्यक्रमों की जानकारी देना।
3. जड़ी–बूटियों की खेती तथा उनके संग्रहण एवं परिवहन से संबंधित विभिन्न संस्थाओं को प्रस्ताव, योजनाओं एवं कार्यक्रमों के निर्माण एवं क्रियान्वयन हेतु मार्गदर्शन प्रदान करना।
4. औषधीय पौधों की पहचान करना, उन्हें सूचीबद्ध करना तथा उनकी उपलब्धता की मात्रा का पता लगाना।
5. पूर्वतया प्राकृतिक रूप से उत्पन्न हो रहे औषधीय पौधों के संरक्षण, तथा कृषिकरण के माध्यम से तैयार होने वाले औषधीय पौधों की खेती को बढ़ावा देने की दिशा में कार्य करना।
6. औषधीय पौधों के उत्पादकों एवं संग्रहणकर्ताओं को उनके उत्पादों के संग्रहण, परिवहन एवं विपणन हेतु सहकारी एवं सहयोगात्मक प्रयास करने हेतु प्रोत्साहित करना।

7. औषधीय पौधों को सूचीबद्ध करके डाटाबेस तैयार करना, इनमें संबंधित जानकारी को प्रचारित करना तथा औषधीय पौधों के ऐसे चिकित्सीय उपयोगों से संबंधित पेटेन्ट्स की सुरक्षा करना जो कि जनसामान्य के उपयोग के हैं।
8. औषधीय पौधों के रूप में कच्चे माल के आयात–निर्यात एवं इनमें औषधीय, खाद्य पदार्थों तथा सौन्दर्य प्रसाधनों के रूप में हो सकने वाले मूल्य संवर्धन हेतु प्रयास करना। इसके साथ–साथ इनके उत्पादों के विपणन हेतु बेहतर तकनीकें अपनाने हेतु प्रयास करना ताकि गुणवत्ता या विश्वासनीयता की दृष्टि से इन उत्पादों की राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में प्रतिष्ठा बढ़ सके।
9. औषधीय पौधों के विभिन्न पहलुओं से संबंधित वैज्ञानिक तथा तकनीकी आधारित शोध कार्यों को प्रोत्साहित करना।
10. विभिन्न औषधीय पौधों की कृषि तकनीक तथा गुणवत्ता नियंत्रण हेतु आधिकारिक विवरण विकवित करना।
11. औषधीय पौधों के क्षेत्र में पेटेन्ट अधिकारों तथा बौद्धिक सम्पत्ति अधिकारों के संरक्षण को बढ़ावा देना।

औषधीय किसानों हेतु बोर्ड की प्रमुख योजनाएं

अपने प्रमुख उद्देश्यों की पूर्ति हेतु बोर्ड द्वारा विभिन्न योजनाएं प्रतिपादित की गई हैं जिनमें इस क्षेत्र से संबंधित शोध परियोजनाओं के साथ–साथ औषधीय पौधों के प्रदर्शनी फार्मों की स्थापना, गुणवतापूर्ण प्लांटिंग मेटेरियल के उत्पादन हेतु नर्सरियों की स्थापना, इस क्षेत्र के प्रसार हेतु विभिन्न शैक्षणिक कार्यक्रम, पाठ्य प्रशिक्षण तथा जानकारी आदि प्रदान करने हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रमों एवं सेमीनार तथा कार्यशालाओं को सहायता प्रदान करना आदि सम्मिलित हैं।

औषधीय खेती हेतु अनुदान की योजना

विशेष रूप से औषधीय पौधों की खेती से जुड़े किसानों को इस कार्य हेतु प्रोत्साहन प्रदान करने के उद्देश्य से बोर्ड द्वारा एक अत्याधिक महत्वपूर्ण योजना प्रतिपादित की गई है जिसे औषधीय खेती हेतु अनुदान की योजना

कहा जाता है। इस योजना के अंतर्गत यदि कोई किसान बोर्ड द्वारा प्रोत्साहित किए जाने वाले 32 औषधीय पौधों में से किन्हीं पौधों की खेती करना चाहते हैं तथा उनके पास इनके विपणन की उपयुक्त व्यवस्था है तो ऐसे प्रकरणों में बोर्ड द्वारा कुल परियोजना लागत का 30 प्रतिशत (अधिकतम 9 लाख रु. प्रति प्रकरण) अनुदान के रूप में दिया जा सकता है।

योजना का लाभ लेने हेतु पात्रता : बोर्ड की उपरोक्त अनुदान योजना का लाभ वे किसान उठा सकते हैं, जो–

(क) उन औषधीय पौधों की खेती कर रहे/करना चाह रहे हों जिन्हें राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड द्वारा प्राथमिकता सूची में रखा गया हो (ऐसे पौधों की सूची आगे दी जा रही है)।

(ख) जिन्हें उनकी परियोजना हेतु किसी बैंक से (परियोजना लागत का कम से कम 10 प्रतिशत) वित्तीय सहायता स्वीकृत की गई हो/वितरित की गई हो।

(ग) जिनके पास उनके प्रस्तावित उत्पादों (प्रस्तावित औषधीय पौधों से उन्हें जो उत्पादन प्राप्त होंगे) को बेचने की निश्चित व्यवस्था हो तथा इस संदर्भ में उनके द्वारा प्रस्तावित खरीददारों से लिखित करार प्राप्त किए गए हों।

योजना का लाभ लेने हेतु संलग्न किए जाने वाले प्रपत्र : इस योजना का लाभ लेने हेतु संबंधित किसान को निम्नलिखित प्रपत्र संलग्न करने होंगे–

1. जिन औषधीय पौधों की खेती करना चाहते हैं उसकी विस्तृत परियोजना प्रतिवेदन।
2. संबंधित परियोजना हेतु बैंक का ऋण स्वीकृति पत्र (परियोजना लागत का कम से कम 10 प्रतिशत)
3. जिस भूमि पर इन पौधों की खेती करना प्रस्तावित हो उसके स्वामित्व/लीज संबंधी कागजात
4. प्रस्तावित औषधीय पौधों के खरीददारों से निर्धारित प्रपत्र में सहमति पत्र

अथवा खरीदी करार।

5. संबंधित राज्य के राज्य औषधीय पादप बोर्ड/लघु वनोपज संघ के नोडल अधिकारी अथवा इस कार्य हेतु बोर्ड द्वारा नामित किसी अन्य अधिकारी का अनुशंसा पत्र।

राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड नई दिल्ली द्वारा प्रोत्साहित किए जा रहे प्रमुख औषधीय पौधे :

1. आंवला, 2. अशोक 3. अश्वगंधा, 4. अतीस, 5. बेल, 6. भुमि आमलकी, 7. ब्राह्मी, 8. चंदन, 9. चिरायता, 10. गिलोय, 11. गुड़मार, 12. गुग्गुल, 13. इसबगोल, 14. जटामांसी, 15. कलिहारी, 16. कालमेघ, 17. कोकुम, 18. कुठ, 19. कुटकी, 20. मकोय, 21. मुलेठी, 22. सफेद मूसली, 23. पत्थर चूर, 24. पिप्पली, 25. दारूहल्दी, 26. केसर, 27. सर्पगंधा, 28. सनाय, 29. शतावरी, 30. तुलसी, 31. बायविडंग, 32. वत्सनाभ।

उपरोक्त के अतिरिक्त भी यदि किसी औषधीय पौधे के संदर्भ में किसान के पास सुनिश्चित बाजार है तो उस पर भी विचार किया जा सकता है।

बोर्ड द्वारा राज्यवार अनुमोदित औषधीय पौधे :

मध्यप्रदेश	:	आंवला, अश्वगंधा, बेल, भुई आंवला, ब्राह्मी, गुड़मार, गुग्गुल, कलिहारी, मकोय, सफेद मूसली, पत्थरचूर, सर्पगंधा, सनाय, सतावरी, गिलोय।
राजस्थान	:	आंवला, अश्वगंधा, बेल गुग्गुल, कलिहारी, मकोय, मुलेठी, पत्थरचूर, सनाय सतावरी, गिलोय।
महाराष्ट्र	:	आंवला, अश्वगंधा, कलिहारी, पत्थरचूर, पिप्पली।
उत्तर प्रदेश	:	आंवला, बेल, भुई आंवला, ब्राह्मी, गुड़मार,

कलिहारी. कालमेघ मकोय

मूसली, सर्पगंधा, शतावर, तु

आन्ध्र प्रदेश	:	चंदन, गुड़मार, सफेद मूसली।
अंडमान निकोबार	:	अशोक।
बिहार	:	आंवला, अशोक, बेल, भुंई आंवला, ब्राह्मी, गुड़मार, कलिहारी, कालमेघ, मकोय, सफेद मूसली, पिप्पली, बायबिडंग, तुलसी, गिलोय।
चंडीगढ़	:	आंवला, अश्वगंधा, बेल, भुई आंवला, गुड़मार, कालमेघ।
देहली	:	भुई आंवला, मकोय, मुलैठी, अश्वगंधा, बेल।
गोआ	:	कोकुम।
गुजरात	:	आंवला, बेल, गुग्गुल, ईसबगोल, सफेद मूसली, सनाय।
हरियाणा	:	आंवला, अश्वगंधा, मुलैठी, ब्राह्मी,
हिमाचल प्रदेश	:	अतीस, चिरायता, दारूहल्दी, कुठ, कुटकी, शतावरी, वत्सनाभ।
जम्मू तथा कश्मीर	:	अतीस, चिरायता, दारूहल्दी, कुठ, कुटकी, शतावरी, वत्सनाभ।
कर्नाटक	:	ब्राह्मी, चंदन, कोकुम, पिप्पली।
केरल	:	ब्राह्मी, कोकुम, पिप्पली।
उड़ीसा	:	आंवला, अशोक, गुड़मार, कालमेघ, कोकुम, बायबिडंग।
तमिलनाडु	:	ब्राह्मी, चंदन, कालमेघ, सफेद मूसली, पिप्पली।
उत्तरांचल	:	अतीस, ब्राह्मी, चिरायता, दारूहल्दी, जटामांसी, केसर, कुठ, कुटकी, सतावरी, वत्सनाभ, तुलसी, गिलोय।

पश्चिमी बंगाल	:	अशोक, ब्राह्मी, कोकुम, पिप्पली, सर्पगंधा।
पंजाब	:	अश्वगंधा, ब्राह्मी, बायबिडंग।
उत्तर–पूर्वी राज्य	:	अतीस, अशोक, अश्वगंधा, चिरायता, गिलोय, जटामांसी, कुटकी, पिप्पली, सर्पगंधा, वत्सनाभ, वायबिडंग।

❖❖

4.3 सुगंधीय पौधों की खेती तथा उच्च तकनीकी वाली बागवानी फसलों हेतु किसानों का सहयोगी संस्थान

राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड

राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड की स्थापना एक स्वायत्तशासी सोसायटी के रूप में वर्ष 1984 में हुई थी। बोर्ड की स्थापना का मूल उद्देश्य विभिन्न बागवानी फसलों को प्रोत्साहित करना, इनके कृषिकरण को बढ़ावा देना, इनके प्रक्रियाकरण एवं मूल्य संवर्धन से जुड़े प्रयासों को सहायता प्रदान करना तथा इनके विपणन के लिए अच्छी अधोसंरचना (इन्फ्रास्ट्रक्चर) के विकास हेतु प्रयास करना सम्मिलित हैं। इन उद्देश्यों के अंतर्गत बोर्ड द्वारा कई योजनायें प्रतिपादित की गई हैं। जिनमें किन्हीं योजनाओं के लाभ विभिन्न विभागों अथवा संस्थाओं के माध्यम से किसानों तक पहुंचाए जाते हैं। जबकि अधिकांश योजनाएं ऐसी हैं जिनका लाभ किसानों द्वारा सीधे उठाया जा सकता है। औषधीय एवं सुगंधीय पोधों एवं अन्य बागवानी फसलों का उत्पादन करने के इच्छुक किसानों के लिए बोर्ड द्वारा संचालित की जा रही प्रमुख योजना के विवरण निम्नानुसार हैं–

अ. योजना का नाम

औषधीय कृषि एवं बागवानी के क्षेत्र में कृषकों को प्रोत्साहित करने हेतु बोर्ड द्वारा चलाई जा रही योजना "उत्पादन तथा उत्तर फसल प्रबंधन के माध्यम से वाणिज्यिकम बागवानी का विकास" (Development of Commercial Horticulture through Production and Post harvest Management) के नाम से चलाई जा रही है, जिसके अंतर्गत किसानों के सीधे हित की योजना "उत्पाद से सम्बद्ध" है। इस योजना के अंतर्गत किसानों को बागवानी तथासुगंधीय फसलों की खेती हेतु उनके द्व बैंकों से लिए जाने वाले ऋण का एक निश्चित भाग अनुदान के रूप में दिया जा सकता है। इस योजना के प्रमुख प्रावधान निम्नानुसार हैं–

ब. योजनांतर्गत ली जा सकने वाली प्रमुख गतिविधियां/क्रिया कलाप

योजना के अंतर्गत जो प्रमुख गतिविधियां मान्य की जा सकती हैं, वे

हैं—

(क) उच्च गुणवत्ता प्राप्त वाणिज्यिक बागवानी (कामर्शियल हार्टीकल्चर) फसलों की खेती (High quality commercial horticulture crops) जैसे आंवला, बेल आदि की खेती।

(ख) देशज फसलों/उत्पाद/हर्ब्स का कृषिकरण (Production of indigineous crops/produce, herbs)

(ग) सुगंधीय पौधों जैसे लेमनग्रास, पामारोजा, सिट्रोनेला, जिरेनियम आदि का उत्पादन (production of seeds and nursery)

(घ) बीज तथा नर्सरी उत्पादन (production of seeds and nursery)

(ङ) जैव प्रौद्योगिकी तथा ऊत्तक प्रौद्योगिकी संबंधी कार्य (Bio-technology and Tissue culture)

(च) जैव कृमिनाशी (Bio-pesticides)

(छ) कार्बनिक खाद्य पदार्थों का निर्माण (Production of organic food)

(ज) कृषि/बागवानी स्नातकों द्वारा बागवानी स्वास्थ्य क्लीनिकों/प्रयोगशालाओं की स्थापना (Establishment of Horticulture health clinics/laboratories by Agriculture/horticulture Unemployed graduates)

(झ) वाणिज्यिक कृषि एवं बागवानी हेतु परामर्शदात्री सेवाएं (Consultancy Services)

(ञ) मधुमक्खी पालन (Bee Keeping)

द सहायता के लिए पात्रता

इस योजना का लाभ कोई भी ऐसा कृषक, भागीदारी फर्म, निगम, कम्पनी, सहकारी समिति, कृषि उत्पाद विपणन समिति, विपणन बोर्ड, नगर निगम/समिति, कृषि उद्योग निगम अथवा अनुसंधान एवं विकास संगठन ले सकता है जिसे उपरोक्त में से किसी गतिविधि/इकाई परियोजना हेतु किसी मान्यता प्राप्त वित्तीय संस्था/बैंक द्वारा ऋण प्रदान किया गया हो।

प्रस्ताव के साथ संलग्न किए जाने वाले प्रमुख प्रपत्र

इस योजना के अंतर्गत वहीं इकाइयां लाभ प्राप्त करने की पात्र हो सकती हैं। जिन्हें किसी बैंक द्वारा वित्तीय सहायता प्रदान की गई हो क्योंकि योजनांतर्गत बोर्ड की भूमिका तभी प्रारंभ होती है जब योजना को किसी बैंक द्वारा वित्तीय सहायता प्रदान करने हेतु मान्यकर लिया गया हो। इस संदर्भ में मुख्यतया दो प्रकार के प्रपत्र संलग्न करने होंगे– (क) बैंक द्वारा प्रवर्तक के संदर्भ में प्रपत्र तथा (ख) संबंधित किसान द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले प्रपत्र

क. बैंक द्वारा किसान/प्रवर्तक के संदर्भ में प्रस्तुत किए जाने वाले प्रपत्र : क्योंकि योजनांतर्गत प्रमुख भूमिका संबंधित बैंक की होती है, अतः जिस बैंक ने किसान/प्रवर्तक के संदर्भ में ऋण स्वीकृत/वितरित किया होताहै उससे निम्नलिखित प्रपत्र वांछित होते हैं–

1. संबंधित बैंक (जिसने संबंधित किसान को ऋण स्वीकृत किया हो) द्वारा किसान/प्रकरण के संदर्भ में अनुदान प्राप्त करने हेतु अपने लैटर पैड पर राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड को अनुरोध पत्र।
2. बैंक के लेटर पैड पर संबंधित प्रकरण की प्रोजेक्ट रिपोर्ट/प्रोफाइल जिसमें निम्नलिखित विवरण होने चाहिए।
   - (क) किसान/प्रोजेक्ट का नाम, पता तथा इकाई का स्थापना स्थल (लोकेशन)
   - (ख) किसान/प्रवर्तक के विवरण
   - (ग) संबंधित बैंक का नाम
   - (घ) परियोजना हेतु प्रस्ताविक वित्तीय स्रोत (means of finance) राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड से प्रस्तावित अनुदान के विवरण सहित।
   - (च) बिन्दुवार वित्तीय प्रोजैक्शन्स
   - (छ) इकाई/प्रोजैक्ट के अंतर्गत सम्पन्न की जा रही प्रमुख गतिविधियां
   - (ज) इकाई की तकनीक तथा वित्तीय लाभजन्यता (technical and financial viability) पर बैंक की राय।
   - (झ) और भी कोई विवरण जो बैंक देना उपयुक्त समझे

3 बैंक द्वारा संबंधित परियोजना के संदर्भ में जारी किये गए स्वीकृति पत्र (sanction letter) की प्रति। उल्लेखनीय है कि योजना का लाभ लेने हेतु कुल परियोजना लागत का कम से कम 25 प्रतिशत भाग सावधिक ऋण (Term Loan) के रूप में प्राप्त करना अनिवार्य होता है।

4. बैंक द्वारा संबंधित प्रकरण में वितरित किए गए सावधिक ऋण (Term Loan) का विवरण। (यदि किसी इकाई की परियोजना लागत 50 लाख रु. से कम हो तो ऐसे संदर्भ में सावधिक ऋण की सम्पूर्ण राशि वितरित हो चुकी होनी चाहिए।

5. बैंक द्वारा जारी किए जाने वाले मूल्यांकन पत्र (Appraisal Note) की प्रति।

6. संबंधित परियोजना/प्रोजैक्ट के संदर्भ में जमीन की व्यवस्था संबंधी प्रमाण (खसरा/खतौनी/सर्वे आदि)

परियोजना में किए जा चुके मुख्य खर्चों के संदर्भ में बिल/रसीदें जो कि संबंधित किसान/प्रवर्तक (आवेदक) द्वारा भी सत्यापित हों तथा बैंक द्वारा भी।

8. बैंक द्वारा परियोजना के संदर्भ में अपने लेटर पैड पर बिन्दुवार (Item Wise) खर्चे/निवेश का विवरण तथा इस खर्चे/निवेश को पूरा करने हेतु स्रोत (Sources of funding).

9. अभी तक संबंधित इकाई को राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड से अनुदान प्राप्त नहीं हुआ है तथा रेवेन्यू रिकार्ड्स को प्रमाणित करते हुए संबंधित बैंक द्वारा अपने लेटर पैड पर जारी किया जाने वाला प्रमाण पत्र।

10. संबंधित इकाई/परियोजना हाई–टैक (ड्रिप/स्प्रिंकलर सिस्टम आदि युक्त) होनी चाहिए।

ख. किसान/प्रवर्तक द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले प्रपत्र/दस्तावेज

(अ) 10 रु. के स्टॉम्प पेपर पर घोषणापत्र (Affidavit)

(ब) कम्पनी होने की स्थिति में प्रवर्तक के संदर्भ में चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट द्वारा जारी प्रमाण–पत्र

4.4 ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित होने वाली औषधीय एवं सुगंधीय पौधों के प्रसंस्करण की इकाइयों के लिए मददगार

खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्ड

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार तथा स्वरोजगार के अवसर बढ़ाने हेतु यूं तो खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग मुम्बई द्वारा कई योजनाएं प्रतिपादित की गई है, परन्तु औषधीय एवं सुगंधीय पौधों के क्षेत्र से संबंधित जो प्रमुख योजना आयोग द्वारा संचालित की जा रही हैं वह "मार्जिन मनी योजना" के नाम से जानी जाती हैं। इस योजना के अंतर्गत औषधीय एवं संगंधीय पौधों से संबंधित स्थापित की जाने वाली इकाइयों को ब्याजमुक्त मार्जिन मनी (जोकि अंततः अनुदान में बदल जाती है) प्रदान की जाती है। आयोग द्वारा सम्पूर्ण भारत में संचालित की जा रही इस योजना के प्रमुख विवरण निम्नानुसार हैं–

योजना का नाम तथा संचालन

खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग मुम्बई द्वारा प्रतिपादित यह योजना "मार्जिन मनी योजना" के नाम से जानी जाती है। यह योजना संबंधित राज्यों के खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्डों के माध्यम से सम्पूर्ण भारत वर्ष के ग्रामीण क्षेत्रों/कस्बो में संचालित की जा रही है।

योजना का उद्देश्य

इस योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण उद्योगों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक विकास के साथ–साथ ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों का सृजन करना भी है। योजनांतर्गत ग्रामोद्योगों की स्थापना हेतु पात्र इकाइयों को मार्जिन मनी के रूप में वित्तीय सहायता उपलब्ध करवाई जाती है।

वित्तीय सहायता का स्वरूप

इस योजना के अंतर्गत बैंकों द्वारा अधिकतम 25 लाख रु. तक की योजनाएं स्वीकृत की जा सकती हैं। योजनांतर्गत वित्तीया सहायता मार्जिन मनी के रूप में उपलब्ध करवाई जाती है। इस सदर्भ में 10 लाख रु. तक की परियोजनाओं के संदर्भ में विभिन्न श्रेणियों के उद्यमियों के लिए दी जा सकने वाली मार्जिन मनी की मात्रा निम्नानुसार हो सकती हैं–

परियोजना लागत महिलाओं के संदर्भ में	सामान्य श्रेणी के उद्यमियों की पूर्ति के संदर्भ में	अनु. जाति, जन जाति, अल्पसंख्यक, विकलांग
उद्यमी का स्वयं का अंशदान	10 प्रतिशत	5 प्रतिशत
बैंक से अपेक्षित ऋण	65 प्रतिशत	65 प्रतिशत
खादी बोर्ड/आयोग से मिलने वाली मार्जिन मनी (अनुदान)	25 प्रतिशत	30 प्रतिशत

उपरोक्तानुसार 10 लाख रु. तक की परियोजना लागतवाली पात्र इकाइयों को इस योजनांतर्गत 25 से 30 प्रतिशत तक अनुदान (मार्जिन मनी) प्रदान की जा सकती हैं।

10 लाख रु. से अधिक लागत वाली इकाइयों के संदर्भ में उद्यमियों को परियोजना लागत का अधिकतम 10 प्रतिशत मार्जिन मनी के रूप में दिया जा सकता है।

योजनांतर्गत स्थापित की जा सकने वाली इकाइयां

यूं तो बोर्ड द्वारा प्रतिबंधात्मक उद्योगों को छोड़कर (जिनमें मुख्यतया मांस या मांस से संबंधित उद्योग अथवा व्यापार, सिगरेट/बीड़ी उद्योग, शराब की बिक्री वाले होटल/ढाबे, तम्बाकू/ताड़ी उद्योग, वृक्षारोपण तथा उद्यानिकी कार्य, पशुपालन, धागा/कपड़ा निर्माण की इकाइयां, पर्यावरण प्रदूषित करने वाले उद्योग जैसे पॉलीथीन थैली निर्माण उद्योग आदि शामिल हैं), सभी उद्योग जो खादी तथा ग्रामोद्योग आयोग द्वारा मान्य हों, इस योजना का लाभ ले सकते हैं परन्तु औषधीय एवं सुगंधीय पौधों के क्षेत्र से संबंधित मुख्यतया निम्नलिखित इकाइयां इस योजनांतर्गत स्थापित की जा सकती हैं–

1. विभिन्न सुगंधीय पौधों/घासों के आसवन हेतु आसवन संयंत्र (डिस्टीलेशन प्लांट्स)
2. जड़ी–बूटियों के प्रसंस्करण अथवा अर्ध प्रसंस्करण से संबंधित इकाइयां जैसे जड़ी–बूटियों का पावडर बनाना अथवा कोई दवाई या सौन्दर्य प्रसाधन बनाना।
3. जड़ी–बूटियों संग्रहण केन्द्र स्थापित करना जहां जड़ी–बूटियों की

ग्रेडिंग पल्वराइजिंग, पैकिंग आदि की सुविधा हो।

4. जड़ी–बूटियों के अर्ध प्रसंस्करण अथवा स्टोरेज आदि की व्यवस्था संबंधी इकाइयां जैसे सफेद मूसली के छीलने के लिए मशीन अथवा संग्रहण हेतु कूलिंग चैम्बर्स की स्थापना।

5. अन्य कोई इकाई जो इस क्षेत्र में स्थापित की जा सकें।

योजना का लाभ लेने हेतु पात्रता

इस योजना का लाभ कोई भी व्यक्ति (पुरुष अथवा महिला) उठा सकता है, जो निम्नलिखित शर्तें पूरी करता/करती हो–

1. आवेदक की आयु 18 से 45 वर्ष के बीच होनी चाहिए।
2. आवेदक द्वारा प्रस्तावित इकाई "नई इकाई" होनी चाहिए।
3. आवेदक द्वारा उक्त इकाई की स्थापना हेतु शासन की किसी अन्य योजना में लाभ नहीं लिया गया होना चाहिए। (अर्थात् एक ही इकाई हेतु दो स्थानों से अनुदान प्राप्त करने की पात्रता नहीं होगी)
4. आवेदक द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली परियोजना में प्रति व्यक्ति/कारीगर 50000 रु. का स्थाई पूंजी निवेश होना प्रस्तावित होना चाहिए अर्थात् 50000 रु. के स्थाई पूंजी निवेश पर कम से कम एक कारीगर/श्रमिक को पूर्णकालिक रोजगार मिलना चाहिए।
5. इकाई किसी ग्रामीण क्षेत्र में लगाई जाना प्रस्तावित होना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्र से अभिप्राय ऐसे ग्रामों/कस्बों से है जिनकी जनसंख्या 1991 की जनगणना के अनुसार 20000 से कम हो। हालांकि यह आवश्यक नहीं कि संबंधित उद्यमी अथवा प्रवर्तक "ग्राम" में ही निवास करता । उसका निवास तो शहरी क्षेत्र में हो सकता है परन्तु इकाई "ग्रामीण क्षेत्र" में होनी चाहिए।

परियोजना/प्रोजैक्ट के अंतर्गत मान्य प्रमुख मदें

उक्त योजना का लाभ लेने हेतु बनाई जाने वाली परियोजना/प्रोजैक्ट के अंतर्गत भवन/शेड, मशीनरी एवं उपकरण तथा कार्यशील पूंजी सहित सभी मदें सम्मिलित की जा सकती हैं।

मार्जिन मनी का लाभ प्राप्त करने की प्रक्रिया

मार्जिन ऋण "व्याज रहित ऋण" है। इसका लाभ प्राप्त करने के

लिए सर्वप्रथम संबंधित उद्यमी/प्रवर्तक (जो उपरोक्त शर्तें पूरी करते हों) द्वारा संबंधित जिले के खादी ग्रामोद्योग बोर्ड अथवा आयोग के कार्यालय के माध्यम से अपना प्रकरण किसी बैंक में प्रस्तुत करना होगा। बैंक द्वारा परियोजना के संदर्भ में 90 से 95 प्रतिशत तक ऋण (उद्यमी की श्रेणी के अनुसार) स्वीकृत कर दिए जाने पर बैंक द्वारा आयोग/बोर्ड से संबंधित प्रकरण में मार्जिन मनी की मांग की जाती है। तदुपरान्त आयोग/बोर्ड द्वारा उद्यमी के खाते में मार्जिन मनी की राशि जमा करवा दी जाती है जो संबंधित बैंक में दो वर्ष की अवधि के लिए सावधि जमा (Fixed deposit) खाते में रख दी जाती है इस दौरान उद्यमी इस सावधि जमा से प्राप्त होने वाले ब्याज का लाभ तो ले सकता है परन्तु मूल धन का लाभ नहीं। दो वर्ष तक यदि उद्यमी का ऋण खाता नियमित रहता है। (वह बैंक की किश्तें नियमित रूप से भरता है) तो यह राशि उद्यमी के ऋण खाते में समायोजित कर ली जाएगी। (उसका उतना ऋण कम हो जाएगा। डिफाल्टर प्रकरणों में बैंक द्वारा वसूल की गई राशि प्रथमतः बैंक के ऋण पेटे में जमा की जाएगी तथा उसकी बाद शेष राशि मार्जिन मनी आयोग/बोर्ड को वापिस करनी होगी।

आवेदन के साथ वांछित प्रपत्र (Documents)

योजना का लाभ लेने हेतु उद्यमी/प्रवर्तक द्वारा निम्नलिखित प्रपत्र तैयार करने होंगे– • प्रस्तावित इकाई की विस्तृत प्रोजैक्ट रिपोर्ट, • जिला उद्योग केन्द्र से अस्थाई पंजीयन प्रमाण पत्र, • भूमि स्वामित्व (जहां इकाई स्थापित करना प्रस्तावित हो) संबंधी प्रमाण पत्र (रजिस्ट्री अथवा लीज़ डीड), • मशीनरी के कोटेशन्स, • शैक्षणिक तथा तकनीकी-योग्यता संबंधी प्रमाण–पत्र तथा अनुभव प्रमाण पत्र (यदि कोई हों तो), • मूल निवासी प्रमाण पत्र, • आयु संबंधी प्रमाण पत्र, • ग्राम की जनसंख्या संबंधी प्रमाण पत्र तथा इकाई संबंधित ग्राम में स्थापित की जा सकती है इससे संबंधित ग्राम पंचायत का अनापत्ति प्रमाण पत्र, • लाईसेंस/अनुज्ञा पत्र (जिन प्रकरणों में लागू हो), • भवन/शेड से संबंधित ब्लू प्रिंट/मान्यता प्राप्त आर्किटेक्ट से प्राप्त प्राक्कलन, • विद्युत मण्डल से पावर कनेक्सन हेतु सहमति पत्र, • प्रदूषण नियन्त्रण मण्डल से अनापत्ति प्रमाण पत्र, • प्रतिभूति हेतु स्वयं/जमानतदार की सम्पत्ति का विवरण एवं सम्पत्ति बंधक रखने हेतु सहमति, • प्रस्तावित कार्यस्थल का नक्शा, पटवारी द्वारा जारी की गई खसरे की मूल प्रति तथा

4.5 जेट्रोफा तथा नीम आदि जैसे वृक्षमूल तिलहनों के प्रोत्साहन हेतु राष्ट्रीय तिलहन एवं वानस्पतिक तेल विकास बोर्ड (नोवोड) की अनुदान योजना

राष्ट्रीय तिलहन एवं वानस्पतिक तेल विकास बोर्ड (नोवोड) की स्थापना कृषि मंत्रालय भारत सरकार द्वारा की गई है। दसवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान बोर्ड को वृक्षमूल के तिलहनों (Tree Borne Oilseeds) के समन्वित विकास हेतु कार्य करने की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी सौंपी गई है।

वृक्षमूल के तिलहनों के विकास हेतु नोवोड के क्रियाकलाप

इस तथ्य का संज्ञान लेते हुए कि वृक्षमूल के कई उपयोगी एवं महत्वपूर्ण तिलहन हमारे देश के विभिन्न भागों में प्राकृतिक रूप से उगते हैं परन्तु उचित संग्रहण, भण्डारण तथा प्रक्रियाकरण न हो पाने से इनका अधिकांश भाग व्यर्थ चला जाता है, बोर्ड द्वारा इनके कृषिकरण, संग्रहण, भण्डारण तथा प्रक्रियाकरण को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से एक अनुदान योजना प्रतिपादित की गई है 'वृक्षमूल तिलहनों के प्रोत्साहन हेतु बैक एडेड क्रेडिट लिंक्ड सब्सिडी योजना' का नाम दिया गया है।

बोर्ड द्वारा प्रोत्साहित किए जा रहे वृक्षमूल के प्रमुख तिलहन/पौधे

वृक्षमूल के जिन प्रमुख तिलहनों को बोर्ड द्वारा प्रोत्साहित किया जा रहा है, वे हैं– रतनजोत अथवा जैट्रोफा, नीम, करंज, जोजोबा, महुआ, कोकुम, सिमारुबा, तुंग, बाइल्ड एप्रिकॉट तथा चेरुआ।

बोर्ड द्वारा दी जाने वाली सहायता का प्रकार

उपरोक्तानुसार वर्णित तिलहनों/पौधों से संबंधित लाभकारी परियोजनाओं पर बोर्ड द्वारा एडेड क्रेडिड लिंक्ड अनुदान दिया जा सकता है। इस संदर्भ में बोर्ड द्वारा परियोजना का 30 प्रतिशत बैक एडेड अनुदान के रूप में दिया जा सकता है, परियोजना का 50 प्रतिशत बैंकों से ऋण के रूप में प्राप्त करना होगा जबकि शेष 20 प्रतिशत प्रवर्तक द्वारा मार्जिन मनी के रूप में लगाया जाना वांछित होगा। योजना के अंतर्गत मुख्यतया निम्नलिखित प्रकार की परियोजनाएं शामिल की जा सकती हैं–

क. बीज संग्रहण केन्द्रों की स्थापना

वृक्ष मूल के तिलहनों के सही संग्रहण को बढ़ावा देने के उद्देश्य से विभिन्न संसाधनों (इन्फ्रास्ट्रक्चर) की व्यवस्था की जा सकती है। जिनमें प्री–प्रोसेसिंग सुविधाओं की स्थापना जैसे सीड ड्रायर्स, बीजों को सुखाने हेतु गोदाम 4, डी–पल्पर, डीकार्टोकिटर, क्लीनर, गेडर, डिजीटल मॉयस्चर मीटर, डिजीटल वेईंग मशीन तथा एक्सपेलर आदि जैसी सुविधाओं की स्थापना सम्मिलित है। इन केन्द्रों की सहायता हेतु ग्रामीण स्तर पर उपकेन्द्रों की स्थापना को भी प्रोत्साहित किया जा सकता है।

ख. बहुउदेश्यीय पूर्व–प्रक्रियाकरण तथा प्रक्रियाकरण सुविधाओं की स्थापना

बहुउद्देशीय प्री–प्रोसैसिंग तथा प्रोसैसिंग सुविधाओं की स्थापना हेतु इकाइयां भी स्थापित की जा सकती हैं जिनमें सीडड्रायर, डीकार्टीकेटर, क्लीनिंग तथा गेड़िंग आदि जैसी सुविधाएं हो सकती हैं। इस प्रकार की इकाइयों की स्थापना से बीज संग्राहकों को उनके संग्रहण का उचित मूल्य मिलेगा।

ग. एक्सपैलर की स्थापना

परम्परागत धानियों की तुलना में आयल की रिकवरी बढ़ाने, प्रक्रियाकरण में होने वाले घाटे को रोकने, प्रक्रियाकरण में होने वाले खर्चों को घटाने तथा तेलों की गुणवत्ता को सुधारने की दृष्टि से विभिनन वृक्षमूल तिलहनों के प्रक्रियाकरण हेतु आधुनिक एक्सपैलर स्थापित करने संबंधी इकाइयां भी बोर्ड की अनुदान योजना में शामिल की जा सकती है।

वृक्षमूल के विभिन्न तिलहनों हेतु नर्सरी की स्थापना तथा इनके वाणिज्यक कृषिकरण हेतु सहायता

वृक्षमूल के विभिन्न तिलहनों का कृषिकरण अनुपयोगी तथा बेकार पड़ी हुई भूमियों पर किया जा सकता है जिसके लिए अच्छी किस्म के पौध ो तैयार करने हेतु सर्वसुविधा युक्त पौधशालाओं की स्थापना की भी आवश्यकता होगी। इसी प्रकार इन पौधों को लगा देने के उपरान्त इनके फल आने तक इनकी देखभाल (मेन्टेनेन्स) पर खर्चा भी होगा। फलतः इन पौधों की पौध तैयार करने हेतु, पौधशालाओं की स्थापना तथा रोपण के उपरान्त इनके फलीभूत होने तक मेन्टेनन्स के खर्च के लिए परियोजनाएं बनाई जा सकती हैं तथा इस प्रकार की परियोजनाएं भी बोर्ड से सहायता

प्राप्त करने की पात्र होंगी।

पात्रता

बोर्ड की उपरोक्त योजनाओं का लाभ शासकीय/अर्द्ध शासकीय, सरकारी संस्थाएं, संघ आदि भी ले सकती हैं तथा व्यक्तिगत किसान, गैर–सरकारी संस्थाएं तथा स्वयं सेवी संस्थाएं भी। हालांकि परियोजना की लागत संबंधित आवेदक अथवा लाभार्थी की श्रेणी पर निर्भर करेगी परन्तु अनुदान की अधिकतम सीमा परियोजना लागत के 30 प्रतिशत तक हो सकती है।

सहायता प्राप्त करने की विधि

उपरोक्तानुसार वर्णित श्रेणियों में परियोजना तैयार करके सर्वप्रथम बोर्ड से सैद्धान्तिक सहमति (इन प्रिंसिपल एप्रूवल अथवा आई.पी.ए.) प्राप्त करनी होगी। बोर्ड से आई.पी.ए. प्राप्त करने के उपरान्त लाभार्थी अपने बैंक/वित्तीय संस्था से ऋण की प्राप्ति हेतु सम्पर्क करेगा। आई.पी.ए. प्राप्त करने के एक वर्ष के अन्दर–अन्दर लाभार्थी को बैंक से ऋण स्वीकृत करवाना होगा। ऋण के स्वीकृत होने के दो वर्ष के भीतर इकाई सम्पूर्ण हो जानी चाहिए। इकाई के सफलतापूर्वक स्थापित हो जाने के उपरान्त अनुदान वितरित कर दिया जाएगा।

योजना से संबंधित अतिरिक्त जानकारी

नोवोड की उक्त योजना की अतिरिक्त जानकारी, पात्रता की शर्तें, विभिन्न इकाइयों के वित्तीय पहलुओं से संबंधित नाबार्ड द्वारा निर्धारित मापदण्ड (स्केल ऑफ फायनान्स) आदि की जानकारी हेतु निम्नलिखित पते पर सम्पर्क किया जा सकता है–

सचिव, राष्ट्रीय तिलहन एवं वनस्पति तेल विकास बोर्ड (नोवोड)
प्लॉट क्र. 86, सेक्टर 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, गुड़गांव–122015
(हरियाणा)
फोन– (0124) 2341251/2343181/2347674, वेबसाइट :
www.novod. org

❖❖❖

लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. जापानी पोदीना किस समूह का पौधा है?
2. पामारोजा को किस नाम से जाना जाता है?
3. सिट्रोनेला किस कुल का पौधा है?
4. खस का उपयोग किस रूप में किया जाता है?
5. पचौली का वनस्पतिक नाम क्या है?

खाली स्थान भरो :

1. पामारोजा में मुख्य घटक.....होता है?
2. सिट्रोनेला.....कुल की 5 से 6 फीट तक ऊँची सुगंधीय घास होती है?
3. जिरेनियम.....कुल का पौधा है?
4. गुलाब का वनस्पतिक नाम..... है।
5. पचौली के तेल में मुख्य रूप से.....तथा..... .....नाम के घटक पाए जाते हैं।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न :

1. राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड के बारे में आप क्या जानते हैं इसके द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं का वर्णन करें?
2. ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित होने वाली औषधीय एवं सुगंधीय पौधों के प्रसंस्करण के लिए खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्ड किस प्रकार सहायता करते हैं?
3. राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड, नई दिल्ली का निर्माण कब हुआ और इसके उद्देश्यों के संदर्भ में बतायें?

❖❖